संजीवन सन्देश ।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका ६२ वाँ ग्रन्थ।

संजीवन सन्देश।

मूलकर्त्ता—

अँगरेज़ीके प्रभावशाली लेखक, भारतीय
संस्कृतिके परमभक्त

साधुश्रेष्ठ श्रीयुक्त टी० एल० वास्वानी।

अनुवादकर्त्ता—

बाबू वेणीमाधव अग्रवाल, एम० ए०,
प्रोफेसर, नालन्द-कालेज, बिहार।

वैशाख, १९८४ वि०।

अप्रैल, सन् १९२७ ई०।

मूल्य दस आने।
सजिल्दका एक रुपया दो आने।

प्रकाशक–

नाथूराम प्रेमी,

मालिक, हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर,

हीराबाग़, गिरगाँव, बम्बई।

प्रिंटर–

मंगेश नारायण कुलकर्णी,

कर्नाटक प्रेस,

३१८ए, ठाकुरद्वार, बम्बई.

भूमिका

—·०·—

आज हम साधु टी० एल० वास्वानीकी 'महत्तर-भारत-ग्रंथ-माला'की प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुस्तकों—Youth and the Nation, Witness of the Ancient और Ancient Murli—का हिन्दी अनुवाद हिन्दी-ससारके सामने उपस्थित कर रहे है। मूल पुस्तकें अँगरेजी भाषामें लिखी गई है।

सिन्धवासी प्रोफेसर वास्वानी भारतके एक अमूल्य नररत्न हैं। आप इतिहास, साहित्य, दर्शन आदिके आचार्य हैं। फ्रास, जर्मनी, इग्लैण्ड आदि देशोंमे जाकर आपने भारतीय ज्ञान और दर्शनकी महिमाका प्रचार किया है। साधुजी बालब्रह्मचारी है। आपकी असीम विद्वत्ता, पवित्र देशभक्ति और अलौकिक प्रतिभा किसी भी देशको गौरवान्वित कर सकती है। साधुजी अँगरेजी भाषाके पंडित और सुलेखक हैं। आपकी अधिकांश पुस्तके अँगरेजीमें लिखी गई है। साधुजीके विषयमे विदेशी विद्वानोंकी कुछ सम्मतियोको हम नीचे उद्धृत करते है—

"सिन्ध-देशकी मरु-भूमिमे, समता और आकाक्षाके उस क्रीडा-स्थलमे, मैंने एक सिद्ध महात्माके, नवीन स्फूर्तिके एक महान् प्रवर्तकके, एक भविष्यदर्शी साधुके, नूतन भारतके एक ऋषिके, भारतको उज्ज्वल भविष्यकी ओर ले जानेवाले एक नेताके—प्रोफेसर वास्वानीके—दर्शन पाये। मै अपनेको धन्य मानता हूँ।"

—मौ. पाल. रिचर्ड

"विदेशी नौकरशाहीने भारतको एक कारागार बना दिया है। उस बदीगृहकी भूमिपर भारतवासी एक उन्नत प्रासादका निर्माण करेंगे। इस उज्ज्वल भविष्यके निर्माताओंमें प्रोफेसर वास्वानीका स्थान आदरणीय होगा। उनके लेखोंसे उस भारतके सच्चे स्वरूपका पता मिलता है जो उदार सस्कृतिपर स्थित हो, जिसने पवित्र और निःस्वार्थ आदर्शोंकी सेवा करनेका व्रत लिया हो—उस भारतका जिसने कि पाश्चात्य सभ्यताके सर्वश्रेष्ठ तत्त्वोको अपना कर उसके जड़वाद और लोभको तिलाञ्जलि दे दी हो।"

—बरनार्ड हूटन

इतिहास जाननेवाला प्रत्येक मनुष्य यह भलीभाँति जानता है कि प्राचीनकालमे हमारा देश ससारका अग्रणी था। उस उन्नतकालसे वर्तमान पतित अवस्थाकी तुलना करते हुए प्रत्येक देशप्रेमीके आँसू निकल पड़ते हैं। आज

हमे चारो ओर पतन, नाश, निराशा और क्षति दिखलाई दे रही है। पराधीनता, अनुदार संकीर्णता और दीनताने हमारे प्राचीन-देशको अवनतिके अधकारमे ढकेल दिया है। साधु वास्वानीका सदेश आशा और संजीवनका मत्र है। आपका विश्वास है कि जिन महागुणोंके कारण भारतवर्ष प्राचीन कालमें ससारका अग्रणी बना था, उन्हीकी हीनताके कारण ही आज उसकी करुण अवस्था है । हम आत्म-विस्मृतिके अधकारमे सड़ रहे हैं । यदि हमे अपने प्राचीन उन्नत आदर्शोंका ज्ञान हो जावे और यदि हम उनकी कर्मसे पूजा करने लग जावे तो हमारा भविष्य भी, अतीतकालके समान, उज्ज्वल और महान् हो सकता है ।

प्रत्येक जाति और देशका उत्थान उसके विशेष गुणोंके अनुसार ही होता हैं । " अपनी विशेष प्रतिभाको पहिचाने विना कोई भी राष्ट्र महत् बननेकी आशा नही कर सकता ।" अतएव वर्तमान भारतको एक भारी चेतावनीकी नितान्त आवश्यकता है । हम भारतवासी हैं, हमारा उत्थान हमारी जातिके विशेष गुणों और प्रतिभाके अनुसार होगा । किन्तु आज हम क्या पाते है ? अन्ध–अनुकरण । हम अपने विदेशी श्वेतांग शासकोंका सभी वातोमें अनुकरण कर रहे है । यह उत्थानकी नही, वरन् पतनकी निशानी है। क्योंकि इससे हमारी स्वाभाविकता और जातीय प्रतिभा क्षीण होती जा रही है । विदेशी आदर्शोंने हमारे शिक्षित समाजको देशमें रहते हुए भी विदेशी बना दिया है और विषमता उत्पन्न कर दी है। साधु वास्वानी पाश्चात्य देशोंको महागुणोंसे सर्वथा हीन नही कहते । विज्ञान, सगठन, स्वातंत्र्यप्रेम—हमे पाश्चात्य देशोंसे सीखना चाहिये। किन्तु हम किंकर्तव्यविमूढ होकर, अन्ध अनुकरणसे उनके दोषोंको भी अपनाते जा रहे हैं और मानसिक दासताके वशीभूत हो अपने गुणोंको खो रहे हैं । यह अनुकरण हमे घोर पतनकी ओर ले जा रहा है—इससे हमें बचना चाहिये ।

भारतवर्षने अपने उन्नतिकालमें संसारको आध्यात्मिक तत्त्वों और सिद्धान्तोका उपदेश दिया था । आज स्वय भारतवासी उन्हीं महान् उदार सिद्धान्तोंको भूल गये है । उनकी वर्तमान अधोगतिका कारण यही विस्मृति है । धर्मके नाम-पर लूट, अधर्म और दमन मचा हुआ है। आजकल हमारे सामने इतनी अधिक और कठिन समस्याये उपस्थित हैं कि बुद्धि हताश हो जाती है और हम अपने भविष्यको अधकारमय समझने लग जाते हैं। केवल बुद्धि और अनुकरणप्रधान

मति हमारी समस्याओंको कदापि हल नहीं कर सकती। हमे आवश्यकता है, एक क्रान्तिकी, एक आन्तरिक परिवर्तनकी। वर्तमान भीषण रोगोंकी औषधि हमें आत्माके तथ्योंसे प्राप्त होगी। वह महान् सत्य कहता है कि सेवा, बन्धु-भाव और सरलता ही मनुष्यका आदर्श धर्म है। समाज-सेवा, देश-सेवा और संसार-सेवाके विना ईश्वर-पूजा अधूरी रह जाती है। जो मनुष्य होकर भी मनुष्यके उद्धारके लिये प्रयत्नशील नहीं है, उसपर परमात्माकी कृपा कसे होगी? जब इन आदर्शोंके प्रकाशमें हमारे जीवनका विकास होगा तब हमारी सारी समस्यायें सहजहीमें हल हो जावेंगी और हम अपना उद्धार करनेमें सफल हो सकेंगे।

आध्यात्मिक सिद्धान्तोंपर अविश्वास रखनेके कारण ही, जड़वादसे ग्रसित, सारा समार आज हीन अवस्थामे पड़ा हुआ है। सभ्यता, संस्कृति, समाज, सब आज सर्वत्र सकटमें पडे हुए हैं। क्या पूर्वमे, क्या पश्चिममे—सब कहीं विषमता दीख रही है और मनुष्य किंकर्तव्यविमूढसा खड़ा हुआ है। संसार पतनोन्मुख है। फिर ससारको सजीवनका मत्र कौन सुनावेगा? निराशामे भटकती हुई मानव-जातिको सन्मार्ग कौन दिखावेगा? साधु वास्वानीका उत्तर है—भारत। प्राचीन-कालमें एक वार ऐसी ही विकट परिस्थिति उत्पन्न हुई थी। उस समय भारतके भिक्षुओं और उपदेशकोंने ससारको शान्ति, प्रेम और निर्वाणका सदेश सुनाया था। आज फिर वही समय आया है। किन्तु भारत तो निद्रामें पड़ा है—दीन और दलित है। साधुजीका कहना है कि ससारके उद्धारके हेतु भारतको अपना उद्धार करना होगा। भारतके उद्धारपर ही ससारका भविष्य निर्भर है।

इस महा प्रयत्नके लिये भारतवासियोंको तैयार होना पडेगा। साधु वास्वानी नवयुवकोंकी ओर आशापूर्ण दृष्टिसे देख रहे हैं-नवयुवकोंपर उन्हे भरोसा है। यदि वे प्राचीन आदर्शसे अपने जीवनको प्रेरित होने दे, तो इस ध्येयकी प्राप्ति शीघ्र हो सकती है। ये छोटी छोटी पुस्तकें इसीके लिये नवयुवकोंको उत्साहित करती हैं। साधुजीके सदेशके प्रचारके हेतु हम उनकी पुस्तकोंका यह अनुवाद हिन्दी ससारके सामने रखते हुए आशा करते हैं कि यह उन्हें लाभदायक होगा।

नालन्द-कालेज,
बिहार,
१०-१-२७.

वेणीमाधव अग्रवाल।

विषय-सूची

महत्तर-भारत-पुस्तकमाला

१—युवक और राष्ट्र

२—प्राचीन दिग्दर्शन

३—पुरातन मुरली

युवक और राष्ट्र

जाग्रत्

—०—

अंधकारमयी निशा थी। मैं समुद्रतटपर खड़ा था। जलमें तरङ्गें उठ रहीं थीं। तारागण जल-विहार कर रहे थे। क्या उन सबके पास भूत-कालके इतिहासका—उस अतीत कालके इति-हासका जब कि स्वाधीनताका मुकुट भारतके मस्तकपर सुशोभित था—कोई रहस्य नहीं था? मैंने ऊपर देखा, नीचे देखा और गहरी साँस ले ली। लहरें मुझसे टकराने लगीं। नेत्रोंमें आँसू भर आये और मै उस जलमय तारामय एकान्त-में पुकार उठा—"हे प्रभो, आपका प्यारा प्राचीन भारत आज दास है" और हे देशके नवयुवको, मैं तुम्हे वह संदेश भेज रहा हूँ जो मुझे उस गंभीर प्रांतमें सुनाई दिया था—"उठो, निद्रामें कब तक पड़े रहोगे? कब तक आलस्य और ख्यातिके स्वप्नांधकारमे सड़ते रहोगे? यह समय है भगवान्‌की कर्मसे पूजा करनेका। पूर्वके ऋषि-योंकी सन्तानो, जागो! एक एक पाषाण जमाकर स्वतंत्रता देवीका मन्दिर तैयार कर दो। प्राचीन आदर्शको सामने रख कर उस पवित्र मन्दिरकी रचना करनेको अग्रसर हो जाओ। उसका प्रत्येक पाषाण बलिदान तथा त्यागका संगीत सुनावे!"

—टी० एल० वास्वानी।

ॐ ॐ ॐ

समर्पण

—:o:—

तरुण-पथ-प्रदर्शक

साधु हीरानन्दको

सादर सप्रेम

समर्पित

—टी० एल० वास्वानी ।

पूर्वाभास

इन पृष्ठोंको लिखते समय मेरी आँख देशके नवयुवकोंपर है। इस छोटीसी पुस्तकको उपस्थित कर मैं आशा करता हूँ कि यह देशके नवयुवकोंको लाभ पहुँचावेगी तथा उनका उत्साह बढ़ावेगी।

नवयुवकोंको मैं पुनरुत्थानकी शक्ति मानता हूँ। वास्तवमें नवीकरण भी प्रकृतिका एक नियम है। इसी कारण प्रतिदिन नये फूल, नये रूप, नये रंग और नये संगीत प्रकृतिको सौन्दर्यमय और आनन्दमय बनाते हैं। प्रकृतिमें ही अनन्त यौवन है।

सारे राष्ट्र अंधकारमें टटोल रहे हैं। अंधकारके बाद ही अरुणोदयका समय आता है। मेरी आत्माकी प्रार्थना है कि आनेवाला प्रभात दुर्दिनका प्रभात न हो।

यूरोपकी ओर देखो!—विनाशकारिणी शक्तियाँ, राजनीतिक अन्धेर, ऐक्यहीनता, बढ़ती हुई मृत्यु-संख्या!

भारतकी ओर देखो!—भयंकर दरिद्रता, अकाल और रोगके भीषण आघात, हानि और लूट, दमन, बेचैनी, बाहरी शान्ति, पददलित राष्ट्रीयता।

यूरोप जीर्ण हो गया है और पश्चिमी देशोंमें अनेक जनसमुदाय ऐसे हैं जो भारतसे एक नये ज्ञान और नूतन-शक्तिके संदेशकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। कुछ समय हुआ जब मुझे वीयना विश्वविद्यालयके एक अध्यापकका पत्र मिला था। वे चाहते हैं कि यूरोप भारतीयतासे दीक्षित हो जावे। संसारको एक नवीन सभ्यताकी नितान्त आवश्यकता है। क्या भारत उसकी प्राप्तिमें सहायता करेगा?

एक समालोचक कहता है कि भारत बहुत वृद्ध हो गया है। किन्तु चीनको देखो, उसे कमसे कम चार हजार वर्षकी सभ्यताका अभिमान है; फिर भी चीन किसी अन्य राष्ट्रका गुलाम नहीं है।

दूसरा समालोचक कहता है कि सुदीर्घ काल तक पराधीन रहनेके कारण आज भारत साधन-हीन है। यह बात ठीक है; किन्तु भारत इजिप्त (मिसर) से अधिक काल तक पराधीन नहीं रहा। इजिप्त दो हजार सालसे पददलित है; किन्तु आज वह भी स्वतंत्रता प्राप्त कर रहा है।

एक महाशय कहते हैं कि भारतमें विविध जातियाँ है, भिन्न भिन्न भाषायें हैं, अनेक धर्मसम्प्रदाय हैं। परन्तु यूरोपमें भी कई राष्ट्र ऐसे हैं जिनमें भिन्न भिन्न जातियों, भाषाओं तथा धर्मोंका सम्मिश्रण है। किन्तु उनमें राष्ट्रीयताका भाव सबसे अधिक है और मै कहता हूँ कि राष्ट्रीयताका भाव भारतमें सजग और सबल हो रहा है।

फिर भी अपने उद्धारके लिये प्रयत्न करनेवाले देशको कभी कभी भावना-से बढ़कर एक अन्य वस्तुकी आवश्यकता होती है। यह है शक्ति। स्वतंत्रता शक्तिसे प्राप्त होती है—कागजी प्रस्तावों और वादविवादोंसे नही।

मेरा विश्वास है कि भारतमे यह 'शक्ति' विद्यमान है। एक समय था जब भारतवर्ष आध्यात्मिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रोंमे शक्ति-सम्पन्न था। डाक्टर बीसेंटका कथन है कि "इतिहासने भारतको कदापि निर्बल राष्ट्र नहीं जाना;" किन्तु आज! भारतके समान बलहीन कौन है? लेकिन आज भी भारतके बराबर संभाव्य शक्ति किसमें है? प्राचीन संस्कृतिके उत्तराधिकारी और स्वभावतः धर्मप्रिय अपने ३० करोड़ बच्चोंके बलपर भारत क्या नहीं कर सकता?

मैं आशा करता हूँ कि भारतका मार्ग हिंसा और युद्धका मार्ग न होगा। फिर भी इससे पहले कि हम स्वतंत्रता प्राप्त कर सकें और स्वाधीनता हमें अपनाये, हमे शक्ति दिखलाना आवश्यक है। हमें एक आन्तरिक परिवर्तन स्वीकार करना होगा। हमें अपने आपपर—अपनी कमजोरियोंपर—विजय प्राप्त करना होगी।

मैं नम्रताके साथ यह कहना चाहता हूँ कि यह साधना हिंसा और प्रति-शोध (बदला) के उपदेशोंसे कदापि नही होगी। आवश्यकता है रचनात्मक कार्य-प्रणालीकी।

देशके भिन्न भिन्न भागोंमे आदर्श-भक्त नवयुवकोंके दलोंको संगठित करना पड़ेगा। भारतके बालक और बालिकाओंका हृदय भक्तिमय है। देश

उनके सहारे भविष्यको महान् और प्रतिभाशाली बनानेमें समर्थ हो सकेगा। केवल कार्यकारिणी उत्तेजनाको—सृजनी शक्तिको—मुक्त कर दो।

युवकोंको अखिल-भारतीय आन्दोलनके लिये संगठित करो। यह आन्दोलन आदर्श-प्राप्तिके लिये होगा। जब आदर्शवाद अग्रसर होता है, तब वह अग्निके समान अदम्य और अजेय हो जाता है।

अनेक भारतीय युवक यह चाहते हैं कि जड़वादी इंग्लैंडके साथ हम जड़वादहीके अस्त्रोंसे युद्ध करें। एक देशभक्त विद्यार्थीने मुझसे कहा कि हमें आततायी बनना चाहिये। दूसरेने कहा—हमे तीव्र द्वेष करना सीखना चाहिये। किन्तु द्वेष प्रतिहिंसक प्रवृत्ति है। हम देखते है कि विदेशी मनुष्यके प्रति किया गया विद्वेष साम्प्रदायिक शत्रुताके रूपमे परिणत हो जाता है। नहीं, जड़वाद, युद्धवाद और द्वेषपूर्ण राष्ट्रवाद वैमनस्य तथा भेद-भावको बढ़ाते हैं, अतएव इनके द्वारा राष्ट्रकी शक्ति क्षीण होती है।

सबल सचेतन आदर्शवादहीसे जनसमूहका पुनरुत्थान होता है। यूरोप-में जो जागृति हुई थी उसके कर्णधार कौन थे? सन्त बरनार्ड (१०७१-११५२) और सन्त फ्रांसिस (११८२–१२२६) प्रभृति महात्मागण। समय समयपर भारतमें जीवन-संचार किनने किया? आर्य ऋषियोंने, भारतके कर्मयोगी तत्त्वदर्शियोंने, भारतीय आदर्शके उपासकोंने। आज आवश्यकता है इस बातकी कि भारतीय आदर्श नवयुकोंके जीवनमें अवतरित होकर उन्हें माताकी मुक्तिकी पवित्र आकांक्षासे प्रेरित कर दे।

जितना अधिक मैं विचार करता हूँ उतना ही अधिक मेरा विश्वास दृढतर होता जाता है कि वर्तमान समयमें हमें जड़वाद और द्वेषप्रधान राष्ट्रवादको तिलांजलि देकर रचनात्मक कार्यक्रमको लेकर आगे बढ़ना चाहिये।

इसमें दो बातोंकी जरूरत है।—एक भारतीय संस्कृतिके नूतन अध्य-यनकी और दूसरी ग्राम्य-जीवनको आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टिसे पुनर्निर्माण करनेकी।

पहली बातसे यह ज्ञात होगा कि अपने इतिहासके सुदीर्घ कालमें भारत-के विद्वानोंने सदैव प्रेमके तत्त्वका ही उपदेश दिया है—द्वेष और वैरकी रीति कदापि नहीं सिखलाई। दूसरी बातसे यह प्रकट होगा कि भारत अपने ध्येयकी प्राप्तिके लिये किस तरह सामर्थ्य लाभ कर सकता है।

आर्य-सभ्यताके अध्ययनसे यह भलीभाँति जान पड़ेगा कि अपने उन्नविकालमें भारत कैसा था। इस ज्ञानके साथ ही साथ सरल जीवनसे प्रेम तथा परोपकारिताके भाव जागरित होंगे जिससे मनुष्य मतमतान्तरों तथा साम्प्रदायिक झंझटोंसे दूर रह सकेगा। सब धर्मों तथा सब जातियोंमें एक ही परमात्मा विद्यमान है। भारतकी आत्माका विकास इसी सिद्धान्तके अनुसार हुआ है। राष्ट्रीयताको पवित्र बनानेके लिये तथा मतमतान्तरोंकी कलहसे भारतीय युवकोंको बचानेके लिये इसी महान् आदर्शकी आवश्यकता है। सच्चे भारतीय आदर्शसे प्रतिभासित होकर युवकगण गाँव गावमें वह संदेश सुनावेंगे जिससे देश अपने कल्याण-मार्गपर शीघ्रतासे अग्रसर हो सकेगा। अपनी विशेष प्रतिभाको पहिचाने विना तथा अपनी अन्तरात्माका यथार्थ ज्ञान पाये विना कोई भी राष्ट्र महत् बननेकी आशा नहीं कर सकता। सदियोंसे भारतकी अन्तरात्मा उस परमात्माकी साक्षी रही है जिनसे कि सब मनुष्यों, सब जातियों और सब राष्ट्रोंका उद्भव होता है और जिनमें ही वे सब विलीन हो जाते हैं। यदि भारतके युवक इस महान् संदेशको ग्राम ग्राममें सुनावें तो धर्म और देशके नामपर जो द्वेष और मारकाट मची हुई है वह धीरे धीरे मिट जावेगी।

यह शक्तिका संदेश है। इसका अर्थ है अपने आपमें एक नया विश्वास, भारतके ज्वलन्त भविष्यमें नयी श्रद्धा, सभ्यताका उद्धार करनेके हेतु प्राचीन आदर्श तथा उसकी गूढ शक्तियोंका ज्ञान, तथा उनकी उपासना, वर्तमान संसारकी दो मार्मिक बातोंका—विज्ञान तथा प्रजातन्त्रका—अध्ययन, नयी शिक्षा, आरोग्यताके लिये भगीरथ प्रयत्न, मानव शरीरको कृष्णमंदिर मानकर उसके लिये एक विशेष सम्मान, ईश्वरको दीनबन्धु मानकर उनकी नवीन विधिसे पूजा।

नवयुवको! तुम भविष्यके निर्माता हो। तुम ही हमारे इस उजड़े, दुखी और दलित देशका उद्धार कर सकते हो। शर्त केवल यही है कि तुम आर्य्य आदर्शके सच्चे भक्त बनो।

विश्वास रक्खो, भारतीय आदर्श संसारके सर्वश्रेष्ठ आदर्शोंमें एक है। उस आदर्शकी एक ध्वनि सरलता है। ग्रीसने सौन्दर्यकी

उपासना की, भारतने सरलताको अपनाया। वास्तवमें सरलता ही सुन्दरता है।

जर्मनीमें आजकल एक युवक-आन्दोलन चल रहा है। उसमें विद्यालयों तथा महाविद्यालयोंके विद्यार्थी भाग ले रहे हैं। उनका मत है कि प्रकृतिप्रेम और सरल जीवनकी नीवपर समाजका पुनर्निर्माण किया जाय। उनमेंसे कितने ही खुले सिर और नंगे पैर विचरते है। वे भोगविलास और विनाशकारी रीतिरिवाजोंका तिरस्कार करते हैं। खुले स्थानोंमे वे बसते है। हर इतवार और दूसरी छुट्टियोंमे वे गॉवोमें जाते और ग्रामीण गीतों तथा कथा कहानियोका संग्रह करते हैं। वे दीन-किसानोंको खेतीमें मदद करते और उनके साथ रूखा सूखा भोजन खाते हैं। उन्हे मदिरा, कालर, सिगरेट तथा जुल्फोंसे घृणा है। राष्ट्रकी उन्नतिके लिये वे संगीत तथा ग्रामीण साहित्यको ऊँचा स्थान देते हैं। वे स्वाधीनता तथा शक्तिके उपासक है। उनके हृदयमें सरल जीवनके प्रति गहरी भक्ति है। मेरा विश्वास है कि यही जर्मन नवयुवक नूतन जर्मन राष्ट्रके विधायक हैं।

भारतके नवयुवको, यदि तुम सरल जीवनको अपनाओ तो देशके भविष्यको महान् बनानेके उत्कृष्ट साधन बन सकते हो। ब्रह्मचर्य ही सरल जीवनका प्राण है। ब्रह्मचर्य ही प्राचीन आर्य विद्यार्थियोका प्रधान गुण था। आज भारतीय विद्यार्थीगण ब्रह्मचर्य खो बैठे हैं। उनके पहिनाव, खान-पान, रहन-सहन सबसे विलासिता टपकती है। मैं कहता हूँ कि आप ब्रह्मचर्यका पालन करे। इससे आपका शरीर बलवान् होगा, मन दृढ होगा और चरित्र सुधरेगा। शक्तिके बिना सब गुण निरर्थक हैं। निर्बलता ही सदैव हमारा महापाप रही है। कोई सौन्दर्यकी उपासना करते है, कोई मस्तिष्कका विकास चाहते है। मै समस्तवादी हूँ। मेरा आग्रह है—सर्वांग संस्कृति, सम्पूर्ण व्यक्तित्वका अखण्ड विकास, पुरुषार्थका संवर्धन, शक्तिकी उपासना।

अपना ध्येय प्राप्त करनेके लिये एक महान् त्यागद्वारा सदियोंसे संचित आलस्य और हीनताको निकाल बाहर करना होगा। अपने सच्चे स्वरूपको पुनः पहिचानना होगा। भारतकी आत्मा एक नूतन राष्ट्रका अवतार लेनेके लिये प्रस्तुत है। वर्तमान नैराश्य, पराभव और हीनतामे यही भावना हमारे हृदयोंमे आशाका संचार करती है।

दिनभर यही भावना मेरे हृदयमें गूँजती रहती है। रात्रिको यही भावना मुझे जगा दिया करती है। यह भावना है एक गंभीर राष्ट्रकी, एक शक्तिशाली देशकी, नवीन भारतकी—वह भारत जो कि सारे संसारकी व्याधिको दूर करे और जगद्गुरु बनकर ही मानव जातिका नम्र सेवक कहलावे।

ऐसे प्रतापी भारतके लिये देशके सर्वश्रेष्ठ युवकगण अपना सर्वोत्कृष्ट उपहार—आत्म-बलिदान—देवें।

—टी० एल० वास्वानी।

युवक और राष्ट्र
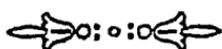
द्वार-रक्षक

पुनरुत्थान और पुनर्निर्माणके आनेवाले आन्दोलनका नेतृत्व नव-युवकोको ही स्वीकार करना होगा ।

नवयुवकोको मैने 'भविष्यके विधायक' कहा है । मै उन्हे भविष्य-के द्वारपाल भी क्यो न समझूँ और द्वार-रक्षक कहकर क्यो न पुकारूँ ? प्रत्येक जातिने ईश्वरको अपनी ही आकृतिमे सजाया है। स्केण्डिनेवियन जातिके ईश्वरकी सफेद और लम्बी दाढी है। सीरियन लोगोने अपने ईश्व-रकी नाक टेढी बनाई है । भारतने अनन्त यौवनमय भगवान् कृष्णकी उपासना की है ।

प्रत्येक देशमे वे लोग जो कि समयकी प्रगतिको समझते है, यह भली भाँति जानते है कि सर्वत्र राष्ट्रके नवयुवक ही उसके भाग्य-विधाता है। यही कारण है कि वर्तमान कठिन नैराश्यमे लोग नवयुवको-की ओर आशापूर्ण दृष्टिसे देख रहे है ।

भारतके नवयुवकोपर ही मेरा भरोसा है । आज कल जो अनेक झगड़े हम देखते है, वे सब वास्तवमें क्षणस्थायी है । बुद्धि, सदाचार, विश्वास और आदर्शहीसे नवयुवक नूतन भारतका निर्माण करेगे । हे भगवन्, उस भारतकी प्रतिभा कल्पनातीत हो। भारतका मस्तक उस आदर्शकी प्रभासे अभिषिक्त हो जिसकी पूजा और साधना आर्य-ऋषि और दार्शनिक युगोसे करते रहे है ।

यदि आप इतिहासको देखें तो जानेगे कि राष्ट्रीय जीवनके लिये नवयुवक क्या क्या कर सकते है। जापान एशिया महादेशका प्रमुख देश

है। वह युवकोंका बहुत ही आभारी है। उनमेंसे अनेकोंने यह सोचा कि जापानको यथार्थमें उन्नत बनानेके लिये उसकी कायापलट करनी पड़ेगी। उन्होने पश्चिमी सभ्यताको तिरस्कार-पूर्ण दृष्टिसे नही देखा। एशियाके आदर्शोंमे अखण्ड श्रद्धा रखते हुए भी मेरी यह धारणा है कि हमे पाश्चात्य देशोंसे कई बाते नम्रतापूर्वक सीखनी चाहिये। विज्ञान, संगठन और सफाई—ये तीन चीजे हम वर्तमान यूरोपसे सीख सकते है। जापानी युवक ओषधि, विज्ञान, कला आदिकी शिक्षा पानेके लिये पाश्चात्य देशोको गये। 'इतो' और उसके साथियोने अपने देशके तात्कालीन रूढ अविचारको परास्त कर, देश-सेवाको ध्यानमे धरते हुए विदेशमे शिक्षा प्राप्त की और लौटकर जापानमे आधुनिक ज्ञानका संदेश फैलाया। जल-सेना और स्थल-सेना तयार की गई। देशमे कर्म आर नियमकी नवीन स्फूर्ति फैल गई। फलतः जापानने अद्भुत वीरता और बुद्धिमत्ताके साथ रूसका सामना किया और विजय पाई।

यह सच है कि जापानपर आधुनिकता और सैनिकवादका प्रभाव जरूरतसे ज्यादा पड़ा है और वह भी यूरोपके आर्थिक साम्राज्यवादके रोगसे ग्रसित हो गया है। कोरियाके प्रति जापानकी नीति और व्यवहार सर्वथा निन्दनीय है। यह अत्यन्त खेदकी बात है कि पाश्चात्य विज्ञानके साथ ही साथ जापानने पाश्चात्य जीवनचर्याके सिद्धान्तोको भी अपना लिया है। हमे इनको अलग अलग करना होगा। पाश्चात्य सभ्यताके प्रथम इन्द्रजालने पहले तो पूर्वको सब कहीं विवशसा करदिया था। लेकिन हमे यह ध्यानमें रखना चाहिये कि फिर भी वे जापानके नवयुवक ही है जो उसकी भ्रान्तिको दूर करनेका प्रयत्न कर रहे है। पाश्चात्य संस्थाओमे जो गुण है, उन्हें अपनाते हुए वे एशियाके

आदर्शोंके भक्त बनना चाहते है। वे जड़वाद और सैनिकवादकी हिंसात्मक प्रवृत्तियोंको रोकनेकी चेष्टा कर रहे है। सन् १९२३ मे टोकियो नगरके वासेदा विश्वविद्यालयके भवनमें जो युद्ध-विद्याकी शिक्षाके सम्बन्धमे जापानियोका सम्मेलन हुआ था उसमे शान्तिवादियोका कही अधिक बहुमत था। उन्होने युद्धवादका घोर विरोध करते हुए कहा था—सैनिकवादियोका नाश कर दो। युद्धवादके विरुद्ध आन्दोलन करनेके लिये उन्होने एक समिति बनाई है। उनके गीतका एक पद था—"एकको यशके शिखरपर चढ़ानेके लिये सहस्रों जीवोकी बलि होती है।" इस घटनापर टीका करते हुए एक जापानी समाचारपत्र कहता है कि इससे जनताके उन अद्भुत विकारोका पता लगता है जो कि जापानके आनेवाले युगकी सन्तानके विचारोको आन्दोलित कर रहे है। युवकोमें साम्राज्यवाद-विरोधी भाव बलवान् हो रहे है और आज अनेक ऐसे है जो यह चाहते है कि जापान चीनपर अत्याचार करना बंद कर दे और कोरियाको स्वराज्य दे दे। यही नववयस्क बालक और बालिकाएँ जापानकी आशा है।

चीनकी अवस्थापर विचार कीजिए। हम समाचारपत्रोमे चीनकी अराजकताका हाल पढते है। यह सत्य है कि चीन अव्यवस्थित है; किन्तु हमे यह न भूलना चाहिये कि वहाँपर भी एक नवीन युगको लानेवाली शक्तियाँ वर्तमान है। आजकलकी अराजकतामें भी वहाँ रचनात्मक शक्ति काम कर रही है। इसमे भी अधिकतर नवयुवक और विद्यार्थी भाग ले रहे है। चीनकी पुनर्जागृतिका प्रारभ नवयुवकोने ही किया है। वे गाव गाँव फिरे और लोगोको उत्साहित किया। आजकल वहाँके लोगोकी जिज्ञासा अधिकाधिक बढ रही है। नौ सालमे विद्यार्थियोकी संख्या तिगुनी हो गई है। पुस्तका-

लय, व्याख्यान-समितियाँ, वाचनालय, गरीबोंके लिये पाठशालायें—इन सबकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। चीनी लोगोंकी एक पुरानी कहावत है—उद्योग प्रशंसनीय है और खेल-कूद व्यर्थ है। आज इसका तिरस्कार किया जाता है और शारीरिक उन्नतिकी एक नवीन स्फूर्ति चीनी युवकोंको उत्तेजित कर रही है। उन्होंने भी एक स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ किया है और वे उसे चला रहे है। देश-भक्तिका भाव प्रबल हो रहा है। युवकोंके मुखपत्र 'स्टूडेन्ट्स रिव्यू' में एक युवक प्रश्न करता है कि—देश-भक्ति क्या चीज है? इसका उत्तर वह इस प्रकार देता है—स्वदेशके प्रति जो वास्तविक प्रेम है वही देश-भक्ति है। देश-भक्ति राष्ट्रकी चेतना है। देश-भक्तिके बिना कोई भी राष्ट्र जीवित रहनेके योग्य नहीं है।

चीनमें एक आन्दोलन चला है जिसका नाम है—नवीन-विचार-का आन्दोलन। उसके दो उद्देश्य हैं—एक समालोचनात्मक दृष्टिका विकास और दूसरा राष्ट्रीय जीवन तथा आचार-विचारोंमे जो कमजोरियाँ है उनके विरुद्ध निडर होकर लड़ना। नवीन चीन अपरिवर्तनवादी नहीं, वरन् उन्नतिशील है। वह अपने सामाजिक जीवनमे परिवर्तन करने-को उत्सुक है। शक्ति, उत्साह और स्वतन्त्रतामें—कर्मकी गीतामें—उसका विश्वास है। एक चीनी युवक लिखता है—"नये जीवनका बीज बो दो, शृंखलाओंको तोड़कर फेंक दो। यह नैतिक, धार्मिक तथा आर्थिक मुक्तिका युग है। पुरुषके दासत्वसे स्त्री-जातिका उद्धार हो रहा है। उन्नतिशील बनो। हमे उत्साही, साहसी और कर्मयोगी वीरोंकी आवश्यकता है।" जीवनपर नवीन चीनके जो विचार है वे प्रशंसनीय, निर्भीकता और शक्तिसे सपन्न है। केवल वीरगण ही स्वाधीनताके अधिकारी हैं। एकताके महामन्त्रमे चीनकी अखण्ड

श्रद्धा है। यह बात वहाँकी एक पाठ्य पुस्तकमे सुचारु रूपसे बतलाई गई है—“सारे नागरिकोंके हृदयोंको मिलकर एकहृदय बन जाना चाहिये।” एकताकी शिक्षा पाठशालाओमे दी जाती है। बाल्यावस्थामें जो प्रभाव मनपर पड़ता है, वह सहजमे दूर नहीं होता। चीनी नवयुवक घूम घूम कर ऐसे ऐसे मार्मिक तत्त्वोका प्रचार करते हैं—“देशकी रक्षा करना प्रत्येक मनुष्यका धर्म है।”

“हमें राष्ट्रके प्रति भक्ति और श्रद्धा रखनी चाहिये।”

“हमारा सर्वप्रधान और स्वाभाविक कर्तव्य है—देशको अपमान और आक्रमणसे बचाना।”

नवीन चीन विशेषकर स्वावलम्बनपर भरोसा रखता है। अनुकरणमात्रकी कोरी मतिने कभी राष्ट्र-निर्माण नही किया। हमें स्वयं भीतरसे निर्माण करना होगा। हमारी प्रतिभा ही सृजनी शक्तिको सचेतन करेगी। चीनकी एक पाठ्य-पुस्तकमे लिखा है—“सेवाका उद्देश्य एक महान् आदर्श होना चाहिये और उसे हमें अपनी जातिमें ही पाना होगा।” चीनके नवयुवक महात्मा कन्फ्यूशियस (ईस्वी सन्‌के पूर्व ५५१–४७८) को अपने देशका आचार्य तथा प्रेरक घोषित करते हुए घूमते हैं। महात्मा कन्फूशियसकी शिक्षा नैतिक जीवनकी जननी मानी जाती है। उनके प्रति नवीन—चीनकी भक्ति इन सारगर्भित शब्दोंसे प्रगट होती है—“अतीत और भविष्यत्‌कालके समाजके लिये कन्फूशियस ही सर्वश्रेष्ठ आचार्य और आदर्श है।” भारतमें कितने नवयुवक राम, कृष्ण तथा बुद्धके जीवन-चरित्रसे प्रेरित होते हैं? भारतके साहित्य अथवा दर्शनका ज्ञान कितनोको है? भारतकी संस्कृति और इतिहासको कितने जानते हैं? कितने समझते हैं कि भारतके आध्यात्मिक सिद्धान्त संसारके लिये अत्यन्त उपयोगी

है ? ‘ भारतमाताकी जय ’ और ‘ वन्देमातरम् ’ का घोष करना सरल है; किन्तु कितने मनुष्य ऐसे है जो कि बहिष्कृत या अस्पृश्यको ‘ भाई ’ कहकर गले लगावेंगे ?

कोरियामें भी युवक-समाजने राष्ट्रके लिये बहुत कुछ किया है। वहाँ बालिकाओने सर्व प्रथम झंडा उठाया। एक बालिकाने महिला-परिषदमे कहा–“ हम पुरुष-समाजको जागृत करेगी।” नवयुवक भी आगे आये। उनमेसे अनेक धनिकपुत्र थे। उन्होने ऐश्वर्य और विलासको तिलाञ्जलि दे दी और देशके लिये कष्टोको सहा। उन्हे चिन्ता थी देशोपकारकी, देशोन्नतिकी—व्यक्तिगत सुख और लाभकी नही। मातृभूमिकी पुकार उन्होंने सुनी, उन्हे आदर्शके दर्शन हुए। एक कुलीन नवयुवक फटे-पुराने कपड़े पहिने हुए था। उसे दिनमे दो बार भोजनका ठिकाना नही था। उसने कहा–“ कोरियाकी भलाई-के लिये मै सब कुछ सहन कर सकता हूँ।”

इजिप्तके महान् राष्ट्रीय-आन्दोलनका जन्मदाता एक नवयुवक ही था। उसका नाम था–कमाल पाशा। ये महापुरुष अपने समनामधारी टर्कीके त्राता मुस्तफा कमाल पाशासे भिन्न है। इजिप्तके कमाल पाशा ३० वर्षकी आयुमे ही स्वर्गवासी हो गये; किन्तु इस अल्पकालमें ही उन्होने अद्भुत कार्य कर दिखाया।

कमाल पाशा धनवान् था, बुद्धिमान् था, सुन्दर फ्रेंचभाषा लिख सकता था और उसके हृदयमे इजिप्तके प्रति प्रगाढ भक्ति थी। उसने अपना सारा वैभव देशके बच्चोकी शिक्षाके लिये संस्था बनानेमे लगा दिया। उसने राष्ट्रीय महाविद्यालयकी स्थापना की। उसने नवयुवकोको स्व-स्वाधिकार माँगना सिखलाया कि “ इजिप्तपर इजिप्तवासियोका ही प्रभुत्व रहना चाहिए।” कुछ वर्ष हुए जब मैंने वेल्स-प्रांतके स्वान्सी

नगरमें एक व्याख्यान दिया था। व्याख्यान समाप्त हो जानेपर कई वेल्श पुरुष और स्त्रियोने हाथ मिलाने तथा प्रशंसा करनेके लिये मुझे घेर लिया। वहाँपर साँवले रंगका एक इजिप्टवासी नवयुवक भी था। गौरव-गर्वके साथ वह उन वेल्श पुरुष और स्त्रियोके पास आया और मेरी ओर संकेत कर उनसे बोला—"हमे इनका—अपने एशिया-वासी भाईका—अभिमान है।" उस युवकके हृदयमे एक सुन्दर भाव था। मै इजिप्टवासी नहीं था। देशभक्ति राष्ट्रीयतासे कही अधिक उदार है। देशभक्तिसे भी अधिक उन्नत है मानवजातिके प्रति आदरभाव। मै चाहता हूँ कि भारतीय नवयुवकोमे यह भाव विकसित हो। जब मै देखता हूँ कि देश-भक्तिका अर्थ अँग्रेज या यूरोपीयके प्रति विद्वेप भाव लगाया जाता है, तब मुझे बहुत दुःख होता है। मैं भारतवर्षके लिये स्वतंत्रता चाहता हूँ, किन्तु उसे मै मानव-जातिके नामपर माँगता हूँ। किसी अनजान अथवा विदेशीके प्रति द्वेष या घृणाका स्थान मेरे हृदयमे नही है। वर्तमान यूरोप-के कई साधु और विद्वान् वास्तवमें हमारे ही है। कभी कभी मैं सोचता हूँ कि ये प्राचीन भारतके ऋषि है जिन्होने पश्चिममे अव-तार लिया है। भारतके नवयुवको, एशियाकी आत्माके इस महान् सत्य और सिद्धान्तपर कि "यथार्थमे एक ही तत्त्व अनेक रूपोमे सर्वतः विद्यमान है" अपनी देश-भक्तिको विकसित करो। अनुदार संकीर्ण राष्ट्रीयताके मदको रोको। भारतने किसी एक देशकी, राष्ट्रकी, अथवा साम्राज्यकी उपासना नहीं की, किन्तु समस्त मानव-जातिकी सेवा की है। इतना ही नहीं वरन् भारतने मानव-जातिसे भी अधिक विस्तृत क्षेत्रमे, अखिल-सृष्टिमे—जिसे कि धर्म-ग्रन्थ 'विश्व' कहते है—अपनी सेवा अर्पित की है। यदि तुम सच्चे भारतभक्त बनना

चाहते हो, तो उसके आदर्शोंके प्रकाशमे अपना जीवन व्यतीत करो और उस महान् ध्येयकी उपासना करो जिसका ध्यान वैदिककालसे लगाकर आजतक भारतके अनेक पुत्र और सेवक धरते आये है।

अब हम जर्मनीपर दृष्टि डाले। काण्ट और गिटेका प्रतिभाशाली देश आज दुःख और दारिद्र्यमे पड़ा हुआ है। जर्मनीकी दशापर सहानुभूति प्रकट न करना असंभव है। जर्मन युवक ही उसकी आशा है। दीन गरीबोके लिये उनके हृदयमे प्रेमका स्रोत बह रहा है और उन्हें अपने देशके उज्ज्वल भविष्यमें पूरा विश्वास है। वे नवीन संसार और नवीन मनुष्य-समाजका स्वप्न देख रहे है। कुछ समय हुआ उनमेंसे बहुतसे युवकोंने बर्लिन नगरके पास एकत्रित होकर यह विचार निर्धारित किया था कि "आत्म-विकाससे ही मुक्ति प्राप्य है।" आज वही विचार विस्तृत होकर "सरलता और सेवासे ही मुक्ति संभव है" इस रूपमे बदल दिया गया है। रीति, रिवाज, मत और शिक्षाप्रणालीमें जो कुछ भी कृत्रिम और असामयिक है, उसके विरुद्ध उन्होने घोर विरोध आरम्भ कर दिया है। वे कहते है कि हमे उन कारागारोंकी आवश्यकता नही जिन्हे लोग पाठशालाओके नामसे पुकारते है। प्रकृतिप्रेम, स्वदेशभक्ति और श्रमजीवियोपर सहानुभूति, इसी त्रिमूर्ति प्रेमभावसे वे अपने जीवनको स्फूर्तिमय बनानेकी चेष्टा करते है। जीवनके आध्यात्मिक केन्द्रको पानेके सच्चे देशानुरागने आज जर्मन युवकोको प्रेरित किया है। ये लोग अपने आदर्शकी परिभाषा इस प्रकार करते है:—

---

१ काण्ट (१७२४–१८०४) अर्वाचीन यूरोपके आध्यात्मविद्याके सर्वश्रेष्ठ पंडित माने जाते हैं। २ गिटे (१७४९–१८३२) जर्मनीके सबसे बड़े कवि माने जाते हैं।

"हमारा ध्येय इस नाशवान् सभ्यताको छोड़कर सहज सरलताकी ओर अग्रसर होना है। बाह्य और कृत्रिमको त्यागकर हम आत्मिकता और स्वाभाविकता चाहते है। तुच्छ सुख, स्वार्थी जीवन और अनर्गल आचारको तिलांजलि देकर परम आनन्द, पवित्र मातृभाव और सुविचारमय आत्मज्ञानको प्राप्त करना हमें इष्ट है। हम चाहते है कि हमारी आत्मा ईश्वर, मनुष्य तथा प्रकृतिके अनुकूल रहकर सत्पथपर चले।"

इन लोगोंने यह भली भाँति समझ लिया है कि जडवाद और उदासीनता ही देशके प्रधान शत्रु है। इन युवकोने मदिरापान तथा धूम्रपानको त्याग दिया है और नाशकारी विलासोको लात मार दी है। स्वदेशके अद्भुत सगीतसे उन्हे प्रेम है। एकने तो यहाँ तक कह डाला कि "केवल यह संगीत ही अब बचा है।" वे धरतीपर सोते है। प्रति रविवारको वे ग्रामोमे जाते, खेतोमे किसानोकी सहायता करते और उनके साथ रूखा सूखा भोजन ग्रहण करते है। वे ग्रामवासियोसे निवेदन करते है कि मदिरा और विलासका बहिष्कार करो। उन्हे व्यायाम और संगीतसे प्रीति है। साधारण वस्त्रोंको पहिनकर, हाथमे दण्ड ले, जर्मन युवक एक स्थानसे दूसरे स्थानमे भ्रमण करते है और लोगोको यह शिक्षा देते है कि नैराश्यको त्याग दो, दुराचारका विरोध करो और नवीन मनुष्य बनो।

२

यदि भारतका युवक-समाज नवीन मनुष्य बननेका व्रत ले ले तो वह बहुत कुछ कार्य कर सकता है—महान् रचनात्मक कार्यक्रमका जन्मदाता बन सकता है। आवश्यकता है एक अखिल-भारतवर्षीय-युवक-परिषदकी। मदिरा-पानका बहिष्कार, स्वदेशीका प्रचार, ग्रामोमें

शिक्षाकेन्द्र स्थापित करना, देहातमे सफाई और स्वास्थ्य-रक्षाकी उन्नति करना, गाँववालोमे ओषधियाँ बाँटना, दुष्कालमे असंख्य प्राणियोकी रक्षा करना, नये गृहधन्धोका प्रचार तथा अछूत भाइयोकी दशाको सुधारना—ये सब कार्य उक्त संस्थाद्वारा सुगमतासे किये जा सकते है। यह युवक-परिषद करोड़ो देशवासियोंको भारतका संदेश सुनाकर जीवनके अमर तत्त्व तथा उसकी अनन्त उपयोगितामे भारतके अखंड विश्वासका परिचय दे सकता है।

सन् १९०६–८ मे (बग-भंगके समय) मै बंगालमे था। वहाँपर मैने विद्यार्थियो और नवयुवकोको स्वदेशी वस्त्र धारण किये हुए देखा। महिलाओने भी स्वदेशी-प्रचारमे सहायता दी। असीम उत्साह था। मैने कहा—"बंगालके युवक-समाजने माताकी पुकार सुनी है।" आज कितने उस पुकारको सुनते है?

कुछ वर्ष हुए जब मै गुजरातमे था। मुझे एक विद्यार्थी-सम्मेलनका सभापति बनकर अहमदाबाद जाना पड़ा। वहाँपर मैने बालको और विद्यार्थियोको खद्दर पहिने हुए देखा। मै उनसे किस भाषामें बोलता? मै गुजराती नही जानता, मेरी हिन्दी टूटी-फूटी थी। व्याख्यान आरम्भ होनेसे पहले ही एक विद्यार्थीने आकर मुझसे कहा कि—"अँगरेजीमे नहीं, हिन्दीमे बोलियेगा।" देशभाषाका उन्हे अभिमान था। मैने कहा—"गुजरातके युवकोने भारतमाताकी पुकार सुनी है।" आज कितने उस पुकारको सुनते है?

जापानमे प्रतिवर्ष एक निश्चित दिनको युवक तथा विद्यार्थीगण देशके वीरोके समाधि-स्थानपर दर्शन करने जाते है। साधु हीरानन्दकी समाधि हैदराबाद-सिन्धमे बनी हुई है। मै साधु हीरानन्दको आधुनिक भारतका एक सर्वश्रेष्ठ महापुरुष मानता हूँ। वे सिन्धकी

जागृतिके प्रवर्तक थे। सिन्धहीमें हीरानन्दने अपना जीवन व्यतीत किया और सिन्धको ही अपनी सेवा अर्पित की। एक रमणीक स्थान-पर उस महापुरुषकी समाधि बनी है, किन्तु कितने सिन्धवासी उनके प्रति भक्ति प्रकट करनेके हेतु उस समाधिस्थानपर जाते है? आज माताकी आवाज कितने सुनते हैं?

बर्लिनमे मैंने देखा कि जर्मन नवयुवकोको अपने प्रसिद्ध कवि गिटे और शिलरका (१७५९-१८०५) कितना अभिमान है। किस गौरवके साथ वे अपने कवियों और दार्शनिकोका नाम लेते है। यदि जर्मनीके गिटे है तो सिन्धके शाह अब्दुल लतीफ है, यदि जर्मनी-के शिलर है तो सिन्धके भी बेकस है। फिर भी कितने सिन्धी युवक शाह लतीफकी रचनाओको पढते और उनकी महत्ताको समझते है? कवि बेकसकी स्मृतिमे रोहरीमे एक मेला लगता है; किन्तु वहाँपर मैने सिन्धके पढे लिखे लोगोको नहीं वरन् दूकानदारो और अपढ़ोको ही पाया।

प्राग एक विख्यात विश्वविद्यालय है। उक्रैनिया देशके कुछ विद्यार्थी वहाँ पढते थे। उनसे प्रश्न किया गया कि तुम यहाँ क्यो पढते हो और शिक्षा समाप्त करके क्या करोगे? उत्तरमे उन्होने कहा—"हम अपने देशको वापिस लौट जावेगे और देशवासियोकी सेवा करेगे।" इस उत्तरसे एक सिन्धी युवकके उत्तरका मिलान कीजिये। मैने पूछा—"तुम क्यो पढते हो और तुम्हारा ध्येय क्या है?" उसने उत्तर दिया—"मै परीक्षा पास करके कर-विभागमे नौकरी करूँगा और सरकारको धोखा देकर थोड़े समयमें लाखों रुपया बना लूँगा।" शोकके साथ कहना पड़ता है कि भारतके अधिकतर युवकोका ध्येय धनोपार्जन और स्वार्थ-सेवा ही है। भारत-

माताकी पुकार सुननेवाले कितने है? सिंधमें कितने है? भारतमें कितने है?

प्राचीन समयमे बुद्धदेवने अपने शिष्योंसे कहा—"हे भिक्षुगण! देश देशान्तरोमे जाओ और लोगोसे पूछो कि उन्हें मेरा स्मरण है अथवा नहीं।" मै भी एक भिक्षु हूँ और हे भारतके नवयुवको! मै तुमसे यही प्रश्न करता हूँ कि क्या तुम्हें स्मरण है? अथवा अब तक तुम विस्मृतिमे ही पड़े हो? तुम कहते हो कि देखिये विद्यालय है, महाविद्यालय है, यह हो रहा है, वह हो रहा है। मै नम्रभावसे पूछता हूँ कि क्या वे भारतकी स्मृतिसे परिपूर्ण है? क्या तुमने राष्ट्रीय आत्माके दर्शन पाये है? क्या तुमने भारत-माताकी पुकार सुनी है?

शताब्दियोसे यह ध्वनि गूँज रही है—"उत्तिष्ठ! जाग्रत!" उठो! जागो! मत और पंथ बदल चुके और मिट चुके; किन्तु माताकी वाणी हर शताब्दिमे शब्दायमान होती रही है। हमारा पतन हो गया है; फिर भी माताकी भारती जीवित है, अमर है।

मै निराशावादी नही हूँ। नैराश्यवाद मिट रहा है। मेरा दृढ विश्वास है कि युवकोमे सृजनी शक्ति विद्यमान है। यदि वे चाहे तो भारतमे नये युगका आविर्भाव हो सकता है। उन्हें आवश्यकता है पुरुषार्थमय संस्कृतिकी। इस संस्कृतिका एक रूप सरलता है। यदि तुम मनुष्य बनना चाहते हो तो सरल बनो। हीरानन्द आदि भारतके सभी महापुरुषोके जीवनचरित सरल जीवनकी महत्ता और शोभाके उदाहरण है। वास्तवमे यह भारतीय आचार और संस्कृतिका प्रधान अंग है। महत्ता और सरलता महापुरुषोंमे बराबर विद्यमान रही है। भारतका इतिहास सदासे इस बातका साक्षी है।

कुछ समय हुआ कोरडावा विश्वविद्यालयके छात्रोंने एक जुलूस निकाला था। उनकी पताकाओपर कविवर गिटेके ये प्रसिद्ध वाक्य लिखे थे—" प्रकाश, अधिकाधिक प्रकाश।" भारतके नवयुवक भी " प्रकाश, अधिकाधिक प्रकाश " चाहे। विद्यालयोंकी संख्या बढ रही है, छापाखानोका प्रभाव अधिक होता जा रहा है, और युवक-गण वर्तमान संसारकी स्थिति और आन्दोलनोके विषयमे अधिक जाननेकी इच्छा करते हैं। " प्रकाश, अधिक प्रकाश।" किंतु प्रश्न यह उठता है कि कौनसा, किस प्रकारका प्रकाश? शानदार कपड़े पहिने हुए और थोड़ीसी अँग्रेज़ी जाननेके कारण एक युवकको अपने पिताके प्रति आदर प्रकट करनेमे बहुत शर्म मालूम हुई, क्यो कि वह पिता अँग्रेज़ी नही पढ़ा था और उसके वस्त्र पुराने ढंगके थे। यह सच्चे ज्ञानका प्रकाश नहीं है। मै ऐसे नवयुवकोको जानता हूँ जिन्हे अपने पाण्डित्यका अहंकार है और जो दूसरोंका धन और मान लूटनेमे उसका दुरुपयोग करते है। यह पाण्डित्य वह प्रकाश नहीं है जिसकी कि हमारे देशको आवश्यकता है। चरित्रके विना चतुराई नाशकारिणी शक्ति है। आखिर चतुराई है क्या? कविवर गिटेका मेफिस्टो (एक नाटकका पात्र) चरित्रचित्रणकी दृष्टिसे चतुराईका नमूना है, किन्तु साहित्यमे वह शैतानका प्रतिनिधि है। जिस थेमिस्टोक्लीसकी बुद्धिपर लोगोंको आश्चर्य होता था उसी थेमिस्टोक्लीसने अपने देशके शत्रुओसे मित्रता कर ली। अलिकिवियाडीजकी चतुरता और

१ थेमेस्टोक्लीस (ईसासे पहिले ५१५–४४९) प्राचीन एथेन्सका एक विख्यात राजनीतिज्ञ और योद्धा था। इसने फारसके राजाको हराया, किन्तु बादमें उससे मित्रता कर ली और एथेन्सका शत्रु बन गया।

२ अलिकिवियाडीज (४५०–४०४) यह एक कुलीन, सुन्दर और तीक्ष्ण बुद्धिका नवयुवक था। महात्मा सुकरातका शिष्य भी था। इसने अपने स्वदेश (एथेन्स) की संकटापन्न परिस्थितिका विचार नहीं किया और स्वार्थके लिये उसके शत्रुओंसे मित्रता कर ली।

निपुणता अद्भुत थी, किन्तु वह समय-सेवी निकला। "प्रकाश, अधिक प्रकाश," ठीक है; किन्तु उस प्रकाशमे प्रेमकी ज्योति रहनी चाहिये—वह प्रेम जो कि दीन और दुःखीकी सेवाके रूपमें प्रकट होता है—वह प्रेम जो सब मनुष्योंके प्रति हो, सब जातियोंके प्रति हो, सब देशोंके प्रति हो। सच्ची विद्या प्रेम-ज्योतिसे प्रकाशित होती है। सच्ची सभ्यता सिखलाती है कि मानव-जातिका हृदय ही तुम्हारी वास-भूमि है। देश-भक्तिको सांप्रदायिकता अथवा दलबन्दीसे दूर रक्खो। यदि राष्ट्रीयता किसी अन्य देश या जातिके प्रति द्वेष उत्पन्न करे, तो वह वास्तवमें एक दीन हीन और कुरूप प्रवृत्ति ही है। फ्रान्समे 'यंग रिपब्लिक' नामक एक युवक-परिषद है। उसका एक सिद्धान्त यह है कि "आध्यात्मिक तत्त्व द्वेपकी हिंसक प्रवृत्तियोंसे कहीं अधिक महान् है।" यह एक सुन्दर सिद्धान्त है। मै निवेदन करता हूँ कि आत्माके तत्त्वोपर विश्वास करो। अपने हृदयमें किसी भी देश और जातिके लिये द्वेपको स्थान मत दो। द्वेषसे शक्ति क्षीण होती है; किन्तु आत्मा सृजन और संजीवन कर सकती है।

उस दिन मैंने एक आइरिश बालकका हाल पढा जिसको उसके पिताकी दूकानको लूटनेके निमित्त आये हुए डाकुओंने गोली मार दी थी। अपने एक विश्वासपात्र नौकरकी गोदीमे सिर रक्खे उस मरणोन्मुख बालकने जो शब्द कहे उन्हें मै सहजमे नही भूल सकता। अन्तिम समयके क्षीण स्वरमें उस बालकने कहा—" मै किसीसे द्वेष नही करता, केवल अपनी माताको प्यार करता हूँ।" भारतीय नवयुवको! मै तुमसे उस वीर सुकुमार आइरिश बालकके शब्दोंमे कहता हूँ—"किसीसे द्वेष मत करो, अपनी माताको प्यार करो।" मातृप्रेम तुम्हें मनुष्यमात्रकी सेवाका पाठ सिखलावे। नवीन युगका

संकेत है—एकता। वैमनस्यकी शिक्षा देनेवाला भूतयुग अब मृतप्राय हो रहा है।

देशके युवकोंको बड़े बड़े कार्य करना है। उन्हे सफलता तब तक नही हो सकती जब तक कि उनमे नवीन स्फूर्ति, नवीन चेतनता और नवीन आत्माका विकास नही होता। भारतमें आज अनेक चतुर, शानदार और निपुण मनुष्य पड़े हैं। किन्तु भारतमाताको आवश्यकता है नवीन मनुष्योकी। जड़वाद और स्वार्थसेवन भारतको उन्नत नहीं कर सकते। आध्यात्मिक चैतन्यसे ही भारतका पुनरुत्थान होगा। संसार एक नूतन सभ्यता चाहता है—वह संजीवनी सभ्यता जिसमे पूर्वीय प्राचीन ज्ञान और आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान तथा कलाका समावेश हो। अतएव म भारतके युवकोसे कहता हूँ—"प्रकाश, अधिकाधिक प्रकाश।" उस ज्ञानका प्रकाश जो कि प्रेमकी ज्योति जगाता है। उस ज्योतिको जीवित रक्खो। अरुणोदयका संगीत तुम्हारा स्वागत करनेके लिये तैयार है।

पथप्रदर्शक ! ओ युवक-पथप्रदर्शक ! !

[साधु हीरानन्द]

मै किन शब्दोमे उनकी कथा कहूँ? मेरे हृदयमे एक संगीत निनादित हो रहा है। वह यह है कि भगवान् सबपर कृपा करते है; किन्तु ऐसे कितने है जो उस अनुग्रहसे लाभ उठानेकी चेष्टा करते है? उनकी दया सर्वव्यापी है और उनके सेवक हर देश और हर युगमें अवतार लेते है। सिन्धको भी भगवान्ने अपने भंडारमेसे एक नर-रत्न प्रदान किया था। "भगवान् दया करते है; किन्तु कितने उससे लाभ उठानेका प्रयत्न करते है?" यदि सिन्धने वास्तवमे साधु हीरानन्दके जीवनादर्शको अपनाया होता, तो आज उसकी दशा कुछ और ही होती।

हीरानन्दके विषयमे दो महापुरुषोंकी—एक हिन्दू और दूसरे मुसलमानकी—यह सम्मति है—। इनमेसे मुसलमान जलालुद्दीनसे इस देशके अधिक लोग परिचित नहीं है। आज हिन्दू लोग संगठनका विचार कर रहे है। वर्षों पहिले जलालुद्दीनके मस्तिष्कमे मुस्लिम संगठनका विचार उत्पन्न हुआ था। आप पर्यटन बहुत करते थे, इस्लामके सच्चे भक्त थे और एशिया महादेशकी एकताके पक्षपाती थे। हीरानन्द इनसे कलकत्तेमे मिले। उस समय हीरानन्दकी अवस्था केवल १९ वर्षकी थी और वे उपाधि-परीक्षाके लिये अध्ययन कर रहे थे। हीरानन्दके सम्बन्धमें जलालुद्दीनने कहा—
"इस युवकमे महत्ताके लक्षण हैं।"

दूसरे महात्माका नाम सारे संसारमें विख्यात है—श्रीरामकृष्ण परमहंस। इनका ईश्वरप्रेम इतना अद्भुत था कि धीरेसे हरिनाम उच्चारण करते ही आप सुधि-बुधि भूलकर तन्मय-समाधिस्थ हो जाते थे। आप हीरानन्दको बहुत चाहते थे और सदा कृपा-दृष्टि रखते थे। हीरानन्द बहुधा श्रीरामकृष्ण परमहंसके पास जाते, उनसे वार्तालाप करते, उनके चरण दबाते, उनके शरीरमे तेल मलते और तरह तरहसे उनकी सेवा शुश्रूषा किया करते। एक दिन महात्माने हीरानन्दसे पूछा "तुम्हारा हैदराबाद यहाँसे कितनी दूर है?" हीरानन्दने उत्तर दिया—"हजार कोसकी दूरी पर।" तब महात्मा बालसुलभ सरलतासे बोले—"इतनी दूरतक भी ईश्वरभक्त बसते है? अहा! ईश्वर धन्य है!" यथार्थमें हीरानन्द ईश्वरभक्त थे। स्वभावसे ही उन्हे एकान्त प्रिय था। उनके हृदयमे भगवद्भजनकी गाढ़ अभिलाषा थी।

उन्हें देखे वर्षों बीत गये। वे सीधी सरल विधिसे शिक्षा देते थे और मै उसे ग्रहण करनेके लिये उनके चरणोके निकट बैठता था। वे कथा कहते थे, इतिहास और कविता पढाते थे—किन्तु सर्वोत्तम उपदेश स्वयं उनकी जीवन-कविता थी। वह जीवन शोभा, सौन्दर्य और प्रेमसे परिपूर्ण था।

१४ जुलाई सन् १८९२ को हीरानन्दने देह त्याग दी। आज सिन्धमे उनसा महापुरुष कहाँ है? उन्होने अपना जीवन देशवासियोंकी सेवामे बिताया। उनकी देशभक्ति परमपवित्र प्रेममे पगी थी। दीनो असहायोको वे प्यार करते थे। पीडितो तथा रोगियोकी सेवामे तन, मन, धन लगा देते थे। इसी कारण कराचीका कुष्ठी आश्रम उनके नामसे स्थापित है। उन्होने यह समझ लिया था कि दैनिक

प्रार्थनाहीसे सेवा करनेकी शक्ति प्राप्त होती है। यह भी उन्होंने जान लिया था कि दीन और दरिद्रकी सेवाके बिना ईश्वरोपासना अधूरी है। इसी समन्वयने उस जीवनको सौन्दर्यसंपन्न कर दिया था।

उनकी जीवनलीला ३० वर्ष पूरे होनेके पहले ही समाप्त हो गई। सिन्धकी सेवा वे थोड़े समय तक ही कर सके; किन्तु उस अल्पकालमें ही उन्होंने प्रशंसनीय कार्य कर दिखाया। हैदराबाद (सिन्ध)मे जन्म और सुदूर बाँकीपूरमें उनका परलोकवास हुआ। वह जीवन एक विनयशील आत्माका जीवन था। आत्माकी महत्ता उसकी विनयशीलताके बराबर हुआ करती है। संसारमे ऐसे अनेक मनुष्य है जो उल्कापातकी तरह क्षणिक प्रकाशके साथ विलीन हो जाते है। हीरानन्दका जीवन स्थिर अक्षय ज्योतिसे प्रकाशित है।

उनके जीवनका क्या रहस्य था? जब हीरानन्द 'ईगल्स नेस्ट' नामक संस्थाके सदस्य थे तब वे एक रोजनामचा रखते थे। उसमें आप लिखते है—"हे परमपिता! सदा मेरी यही आकांक्षा रहे कि मैं आपका सच्चा बालक बनूँ।" हीरानन्द आदर्शवादी थे। अपने आदर्शकी उपासना करते हुए और अपने भाइयोंकी सेवामे दत्तचित्त रहते हुए उन्होंने परमपिता जगदीश्वरके सच्चे बालक बननेकी महत्त्वाकांक्षा पूरी की।

मै हीरानन्दको आधुनिक भारतका एक सर्वश्रेष्ठ महापुरुष मानता हूँ। उनकी जीवनी पढते समय मुझे सन्त फ्रान्सिस और जापानी देशभक्त सोनाटोकूका बार बार स्मरण हो आता था। इन तीनों महापुरुषोमें निम्नलिखित चार प्रधान लक्षण पाये जाते है:—

प्रथम—त्याग। हीरानन्दने धनोपार्जन अथवा प्रासाद-निर्माणकी इच्छा कदापि नही की। बंगालमें विद्योपार्जन करनेके अनन्तर वे एक

त्यागी या फकीरका भाव लेकर सिन्धको लौटे । हीरानन्द विद्यालय (Academy) के प्रधान कार्यकर्त्ता थे; किन्तु उन्होने एक पैसा भी वेतन नही लिया ।

दूसरा गुण था—दीनोके प्रति भक्तिभाव । यह भी हीरानन्दमे सुचारु रूपसे व्यक्त था । जब हैदराबादमे हैज़ेका प्रकोप था, तब वे दिनरात पीड़ितो और रोगियोकी सेवामे लगे रहते थे ।

तीसरा गुण था—नम्रता । हीरानन्द नम्र थे । यदि आजकल हमारे अधिकतर प्रयास सफल नहीं होते, तो इसका कारण स्पष्ट है—उनमे नम्रताकी प्रेरणा नहीं रहती ।

चौथा गुण था—उपासना । उपासनाका शब्दार्थ है नीचे बैठना—आत्माके आदेशके आगे मस्तक झुकाना । यही सच्ची उपासना है । बाह्यरूप और कर्मकाड ही धर्म नही है । धर्मका निवास है आत्म-ज्ञानकी प्राप्तिमे, आत्माकी खोजमे, आध्यात्मिकतामे । भारतको आत्मविद्या प्राप्त करनी होगी और अपने इतिहासकी शिक्षाओ तथा महापुरुषोके आदर्शोंको समझना होगा ।

इसी आत्मबोधमे स्वराज्यका रहस्य है । हीरानन्दका जीवन भारतवासियोसे पुकार कर कह रहा है कि नैराश्य और आवेगको दूरकर अपने सच्चे स्वरूपको पहिचानो । हमारे भीतर भी एक राज्य है और परमात्माके उसी राज्यकी हम सब प्रजा है । हीरानन्द इस राज्यके साक्षी है । यदि भारतको भविष्यमे स्वराज्य प्राप्त करना हो, तो उसे इसी आन्तरिक ईश्वरीय राज्यका ध्यान रखना होगा ।

आज हम स्वदेशीकी चर्चा ऐसे गौरवके साथ करते है, मानो आज ही उसका आविर्भाव हुआ हो । हीरानन्द सदैव सिन्धके चर्खेसे काते हुए सूतका वस्त्र धारण करते थे । आज हम मदिरा-बहिष्कार—

की बात कहते है। हीरानन्दने इस कार्यको उस समय प्रारम्भ किया था जब जनता उसका सहर्ष अनुमोदन नहीं करती थी। मुझे याद है कि लोगोने उनपर गिलाव फेंका और उन्हे पत्थर मारे। किन्तु वे उस सत्कार्यमे लगे रहे, हतोत्साह कदापि नहीं हुए। मदिरा-बहिष्कार और स्वदेशी किसी भी आन्दोलनमे विरोधी तथा विदेशीके प्रति उन्हे तनिक भी द्वेष नहीं था। स्वयं कष्ट सहने तथा निस्तब्धतामे ईश्वर-भजन करनेकी महिमा उन्होने समझ ली थी। देशी भाषाओ-की उपयोगिताके सम्बन्धमे उनका उत्साह किसीसे कम नही था। वे अनेक सिन्धी पत्रोके सम्पादक थे और देशी-भाषामें व्याख्यान दिया करते थे। किन्तु अँग्रेजी भाषासे उन्हे घृणा नहीं थी। अँग्रेजी भाषा और साहित्यके महत्त्वको उन्होने पहिचाना था और कविवर शेक्सपियरके हृदय-ग्राही पद वे हम लोगोको बड़ी भावुकताके साथ सुनाया करते थे।

आज हम ग्राम-कार्यका विचार कर रहे हैं। किन्तु हीरानन्दने ३० वर्ष पहिले ही इस कार्यको प्रारंभ किया था। हम आज राष्ट्रीयशिक्षाका नाम लेते है—हीरानन्दने सिन्धमें सर्वप्रथम राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित किया। उन्होने विद्यालयके कोषसे अपने लिये एक पैसा भी नहीं लिया। उनकी शिक्षा-प्रणालीमे संगीत, कला, व्यायाम, धर्मोपदेश आदिके लिये स्थान था। निरे धनोपार्जनके लिये ही उन्होने विद्यार्थियोको शिक्षा नहीं दी—किन्तु उन्होने बालकोमें सच्चे जीवनकी प्रेरणा उत्पन्न की। बालकोकी प्रवृत्तियोको उन्होने दमनसे नही, वरन् प्रेमकी आध्यात्मिक शक्तिसे शिक्षित और विकसित किया। एक बात जिसे स्पष्ट रूपसे समझाने-की वे नाना प्रकारसे चेष्टा करते थे यह थी कि शिक्षा समाज-सेवा-के लिये तैयारी है। क्या यह संसारके इतिहासका उपदेश नहीं है कि विद्याका उद्देश्य समाजकी उन्नति ही है? राजनीतिको अभी

आत्मज्ञान प्राप्त करना है, आदर्शोंको अभी शक्ति संचय-करना है और यह सब तब तक असम्भव है जब तक शिक्षाकी पुनः जागृति न हो। हीरानन्दने यह जागृति सिन्धमे प्रचलित की। वह आज रुक गई है, अतः पुनरुत्थानकी आवश्यकता है। आवश्यकता है ऐसे शिक्षकोंकी जो अपने समयको स्वार्थ-सेवासे निकालकर ईश्वरकी सेवाके लिये समर्पित कर दे। सच्चे आचार्य ही—न कि विशाल भवन और मतमतान्तरादि—विद्यालयोमे यथार्थ राष्ट्रीयता ला सकते है। जब सिन्धमे राष्ट्रीय-विद्यालयोका विस्तार होगा तब हीरानन्दका प्रयत्न सफल होगा।

साधु हीरानन्दके जीवनका रहस्य यही है कि उन्होने अपना समय स्वार्थपरतामें न लगाकर ईश्वरोपासनामे व्यतीत किया। जर्मन कवि अपने एक पात्र फास्टसे यह कहलाता है—"संसारसे हमें क्या पाना है? अतएव त्याग करो, त्याग करो।" लेकिन फास्टका त्याग संसारसे खिन्न नैराश्यके कारण था। हीरानन्दके त्यागमे आनन्द था। हर्षके साथ वे रोगियोकी सेवा शुश्रूषा करने औषधालय जाते थे। हैज़ेसे ग्रस्त मनुष्योंकी ओषधि करनेमे उन्हे आनन्द आता था। विधवाओ और अनाथोकी सहायता करनेमे उन्हे हर्ष होता था। उन्होने आनन्दके साथ अपनी प्यारी कन्याकी शुश्रूषा की। अन्तमें प्राणघातक ज्वरने उन्हे भी धर दबाया और सन् १८९२ ईस्वीमें केवल तीस वर्षकी अल्पायुमे वे स्वर्गवासी हो गये।

सिन्धमे उनका जीवन फूलोंकी सेज नही था। लोग उन्हे समझ नहीं सके। पथप्रदर्शक वीरोंका बहुधा यही हाल होता है। फिर भी अपने उद्देश्यसे वे तनिक भी विचलित नहीं हुए।

सिन्धी युवकोको शिक्षित करनेके हेतु हीरानन्दने एक पाठशाला खोली। बहुतोने उसकी बुराई की। मुझे याद है कि जब मैं उस

पाठशालामें भर्त्ती हुआ तब लोग समझते थे कि वहाँ जाकर लोग आधे ईसाई अवश्य हो जाते है। हीरानन्दने एक 'आशावादी दल' संगठित किया। वे उसका जुलूस हैदराबादकी सड़को और बाजारों-में निकाला करते थे। कोई उनकी हँसी उड़ाते थे, कोई उनपर पत्थर गिलाव फेकते थे, और कई शानदार बाबू अहकारमें मत्त होकर सोचते थे कि यह बालकोका समय नष्ट करता और उन्हे कुमार्गपर ले जाता है। किन्तु हीरानन्द ईश्वरपर भरोसा रख, अविचलित भाव-से, उत्साहके साथ अपने कार्यमे लगे रहे। हिन्दू-महिलाके प्रति उन्हे पूरी और सच्ची सहानुभूति थी। उसकी अवस्थाको सुधारनेके लिये कुछ करनेकी उन्हे गाढ़ अभिलाषा थी। वे चाहते थे कि यह कार्य स्त्री-शिक्षासे प्रारंभ हो। उन्होने स्वयं उदाहरण उपस्थित किया और अपनी कन्याको बाँकीपुर शिक्षार्थ भेजनेका निश्चय किया। घर-में लोगोने इस बातका घोर विरोध किया। हीरानन्द अकेले ही अपने आदर्शकी सेवा तन, मन, धनसे करते रहे—परिणामका विचार नहीं किया। उस समय हैदराबादमे अनीश्वरवाद (नास्तिकता) की लहर फैल रही थी। कुछ विद्यार्थी नवीनताके रागसे मुग्ध होकर नास्तिक बन गये थे। आध्यात्मिक सिद्धान्तोकी व्याख्याके लिये हीरानन्दने वार्तालाप प्रारंभ किये और नास्तिकताके प्रवाहको रोक दिया।

हीरानन्दको स्वयं अपनी महत्ताका ख्याल नहीं था। जो कोई उनसे मिलता था उसपर उनके शान्त स्वभावका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता था। विनयशीलताने उन्हे दूसरोमे प्रेम-संचार करनेकी शक्ति प्रदान की थी। विनयसे ही वे विरोधको जीत लेते थे। विनयसे ही वे शत्रुताको परास्त करते थे। संत*थामसके इन शब्दोमे गंभीर

* एक प्रसिद्ध ईसाई धर्मगुरु और महात्मा ईसाके शिष्य।

तत्त्व भरा हुआ है–" यदि तुम उन्नत पुण्य-प्रासादका निर्माण करना चाहते हो तो नम्रताकी नीव डालो।"

हीरानन्द अपनी सरलताके लिये विख्यात थे। सिन्धके एक श्रेष्ठ घरानेमे उनका जन्म हुआ था; किन्तु आडम्बरकी चाह उन्हे बिलकुल नही थी–उन्हे सरलता और गंभीरता ही प्रिय थी। उनकी सरलतासे उनकी नम्रताका परिचय मिलता था। युवकोके लिये हीरानन्दके जीवन-चरित्रका यही उपदेश है–सरल जीवनके तत्त्वको समझो। उसका नियम है–अपने आपको पहिचानो, आत्मबोध प्राप्त करो।

जो शब्द कविवर शेली † ने अपने ऊपर कहे थे, वही हम हीरानन्द-के बारेमे भी कह सकते है–" वे मित्रहीन गरीबोके मित्र थे।" हीरानन्द-की समता महाभारतके धर्मात्मा युधिष्ठिरसे हो सकती है जिन्होने अपने भाई बहिनोंके बिना स्वर्गमे जानेसे इन्कार कर दिया था। हीरानन्दनें इस सत्यको जाना था कि " जब तक मेरे भाई और बहिन दुःख और दारिद्र्यमें पड़े है, तब तक मुझे विश्राम नही है।"

२

धर्मकी पवित्र प्रेरणाने हीरानन्दके हृदयपर अधिकार जमा लिया था। आध्यात्मिकता उनके आदर्शवादकी उज्ज्वल ज्योति थी। आन्तरिक जीव-नसे उन्हे प्रीति थी और वे बहुधा घर, पाठशाला अथवा मन्दिरके किसी नीरव एकान्तमे बैठकर भगद्भजन किया करते थे। उनका रोजनामचा उनकी आत्म-परीक्षा और आत्म-स्मृतिका साक्षी है। उसमेसे कुछ वाक्य हम नीचे उद्धृत करते है —

" मै न दुःख अनुभव करता हूँ। न सुख मै उस अवस्थामे कब पहुँचूँगा जब कि मेरा सारा शरीर इस बातका साक्षी होगा कि मनुष्य-

† शेली (१७९२–१८२२) इग्लैण्डके एक प्रसिद्ध कवि थे।

का जीवन सुखमय है। वह समय कब आवेगा जब कि मेरी प्रत्येक श्वास सबसे यह कहेगी कि जीवन आनन्द है, जीवन धन्य है और सारे दुःखोंके होते हुए भी जीवन मान्य और सारपूर्ण है। यह कहना घृणित झूठ है कि मनुष्य दुःख सहनेके लिये ही पैदा हुआ है।"

'विश्वासीका मत' नामक पुस्तकके एक खंडमें आप लिखते हैं:—

"जीवन यथार्थ है, स्वप्न नहीं।"

"जीवन पवित्र है और उसका एक निर्दिष्ट ध्येय है। जीवन न मिथ्या है और न अनुपयोगी ही है।"

"नियमोंका विधान ही जगत्का शासन करता है और उसीका प्रभाव मनुष्यपर अनुकूल और प्रतिकूल, दुःखदायी और आनन्ददायी पड़ता है।"

"पापका दण्ड उसी वक्त मिलता है।"

"ईसाका प्रेमविधान मूसा * के शक्तिविधानसे अधिक उन्नत और उदार है।"

"एक पवित्र आनन्द मुझे उत्साहित करता है। वह क्या है? वह यह भाव है कि संसारमें मनुष्यके लिये यथेष्ट स्थान है। मुझे वहाँ आसन प्राप्त करनेके लिये केवल प्रयत्नकी आवश्यकता है।"

"तुम जीवनमे क्या करना चाहते हो? क्या प्रसिद्धि चाहते हो? नहीं। त्याग करना चाहते हो? हाँ। किन्तु कैसे? यह अभी ज्ञात नहीं।"

"अखिल जगत् हमें त्याग और प्रेमका संदेश सुना रहा है। आकाशमे तारागण और भूमिपर हरियाली शान्ति, प्रेम, सदाचार, दानशी-

---

* मूसा (Moses), इन्होंने प्राचीन इसराइल जातिका उद्धार किया था। ये ईसाके पहले सर्वश्रेष्ठ धर्मगुरु माने जाते हैं। इनका स्मृतिशास्त्र प्रसिद्ध है।

लता, सद्वृत्तिका संगीत सुनाते है । सुदूरवर्ती तारागण और नीच तृण प्रकृतिके विधानमें समान हैं । यही समता हममें भी होनी चाहिये । उच्च और नीच, महत् और अधम, आलसी और उद्योगी—सबको नैसर्गिक एकता और प्रेमके साथ मिलकर परस्पर सहायता और शिक्षा देते हुए काम करना चाहिये । प्यारे भाई, विषमता और नैराश्यको प्रेम-सागरमें विसर्जित कर हमे एक दूसरेके लिये सप्रेम उद्योग करना चाहिये।"

"हे परब्रह्म ! आपकी जय हो । हे परमपिता जगदीश्वर ! आपकी जय हो । मेरे चिरन्तन बन्धु ! मै सदैव आपका सच्चा बालक बननेका प्रयत्न करूँ । "

"अंतरिक्षके पक्षियोकी भाँति और पृथिवीके स्थलचरोंके समान अस्फुट स्वरमें मै उन सृष्टिकर्त्ताका गुण-गान करूँ जिन्होने उषा और सूर्यको भेजा है ।"

"जय हो ! विश्वज्योतिकी जय हो ! हे अनन्त आनन्दरूप, मैं अपने स्वरको आपकी सृष्टिके संगीतमें मिला सकूँ और मधुर अस्फुट रागसे आपकी स्तुति करूँ ।"

हीरानन्दके कई विचारो और उनके जीवनकी अनेक घटनाओंपर मैने प्रकाश नहीं डाला है । किन्तु जब जब मैंने उन सबका स्मरण किया है तब तब मुझे यही जान पड़ा है कि हीरानन्दने स्वार्थमे नही, वरन् दूसरोकी सेवामे ही अपना जीवन व्यतीत किया । किसी प्राचीन ग्रंथके ये शब्द उनके सम्बन्धमें भी कहे जा सकते है कि "उसने अहंकारको परास्त कर त्रिविध निधिको जीता है ।" मै प्रतिवर्ष उनकी स्मृति-पूजामे सादर और सप्रेम अपने तुच्छ पुष्प अर्पित करता हूँ । वर्तमान उद्वेग और वासनाके दिनोमे मेरे विचार बार बार उन्हींकी ओर आकर्षित होते है । क्यो कि वे सिखला रहे हैं कि

विना साधनाके, विना निग्रहके और विना आदर्शकी शक्तिके सच्ची और स्थायी स्वाधीनता प्राप्त नही हो सकती। 'अटलांटिसका पतन' नामक पुस्तकमें मैंने एक प्राचीन राज्यके पतन और नाशकी कथा पढ़ी है। एक समय अटलांटिस ज्ञान और कलामें पारंगत था। उसने निरंकुश स्वाधीनता पानेकी चेष्टा की, अतः उसका पतन हो गया। यदि वर्तमान कठिन उद्योग और प्रयासमें हम आदर्शको पैरोंके नीचे कुचल डालें तो हम द्वेष, घृणा और हिंसाको चाहे जितना बढ़ा लें किन्तु हमें सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त करनेकी शक्ति कदापि नहीं मिलेगी। वह शक्ति समस्त राष्ट्रोंके स्वामी—भगवान्—ही प्रदान कर सकते है। भगवान् वह शक्ति उन्हीको देते है जिनमे विनयशीलताका विकास होता है और जिनके सरल जीवनमें त्यागके पुष्प खिलते है।

हीरानन्दका शरीरान्त युवा अवस्थामें ही हो गया और मुझे विश्वास है कि वह समय अब आरहा है जब भारतके नवयुवक उनके सरल और सौम्य जीवनकी महिमाको समझेंगे और उससे प्रेरित होंगे। हीरानन्दका युवको और दीनोके प्रति प्रेम था। वे शान्तिप्रिय थे। क्या तुमने कभी यह प्रश्न किया है कि सिन्धी कवितामें एक शोक-सूचक रागिनी क्यो मिली हुई है? शताब्दियोसे सिन्ध दास-देश है। सिन्धकी आत्माने एक निर्जन शब्दहीन साम्राज्यका—एक आन्तरिक साम्राज्यका—गीत गाया है। हीरानन्द उसी साम्राज्यके सेवक थे। उनके जीवनकी सच्ची राष्ट्रीयताका यही रहस्य है। आध्यात्मिकतासे ही राष्ट्रीय जीवनकी रचनाशक्ति प्रवाहित होती है। स्वतंत्र-भारतका निर्माण पाखंड, कोलाहल और आडम्बरसे नहीं—मौन और त्यागसे होगा।

समाप्त।

प्राचीन-दिग्दर्शन

समर्पण

मेरे यौवनकालके गुरु और प्रेरक,

हिन्दू-संस्कृतिके एक श्रेष्ठ व्याख्याता

और

समस्त संसारके महान् भक्त

उपाध्याय ब्रह्मबान्धवको

(सं० १९१७–१९६४)

सादर सप्रेम समर्पित

—टी० एल० वास्वानी

किम् ?

यौवनकी आकांक्षा और भावनासे भरे हुए मेरे नवयुवक मित्रो, तुम किस ईश्वरकी उपासना करोगे ?

क्या उस विविध मतोंके ईश्वरकी जो कि वासना और अहंकारकी कालिमासे जीवनकी सुगन्धिको कलङ्कित करता है ? अथवा विद्याके उस अधिष्ठाताकी जो कि ध्वंसक है ? अथवा उस सौन्दर्यके ईश्वरकी जो विश्वासघाती है ? अथवा उस संकीर्ण साम्प्रदायिकताके ईश्वरकी जिससे बल और लाभके मोहमें मनुष्य मनुष्यका शत्रु बन जाता है ? या उस परमात्माकी जो सारे संसारमें मनुष्य, पशु और पक्षियोंके बीच सम्बन्ध स्थापित करते है ?

२

वे दरिद्र, धूलधूसरित, गृहहीन दीन-वेशमें खोजते फिरते हैं। परमात्मा आंधीके वेग और हलचलके समय आते हैं। वे देश देश और जाति जातिमे विचरण करते है। भगवान् राष्ट्रके द्वारपर पुकार लगाते हैं; किन्तु सारे देश द्वेष और अहंकारके मदसे पागल हैं और परमात्माकी परवाह न कर अपनी शक्ति क्षीण कर रहे हैं।

३

कोई परमात्माकी अवज्ञा कर हँसते है, कोई उन्हे कोड़ोंसे मारते हैं, कोई उन्हें विद्रोही कह कर धुतकारते है—अथवा राष्ट्र, धर्म या जातिके नामपर उनका वध कर डालते हैं।

किन्तु फिर भी अक्षय क्षमाके साथ, वहिष्कृत, निर्वासित और एकाकी भगवान् हाथमे शान्तिकी व्याधिहारिणी ज्योति लिये महादेशों और महासागरोंको पार करते हुए—अपने निर्दिष्ट पथका अनुसरण कर रहे हैं।

प्रस्तावना

कविने कहा है—"बीती ताहि विसार दे।"

यह सच है कि भारतमें कई रीति-रिवाज ऐसे हैं जो कि बहुत ही विकृत और हीन हो गये हैं, उन्हें दूर करना ही होगा; किन्तु अतीतकालमें एक चेतनता होती है जो अक्षय है। कभी प्राचीन भी सूर्योदयकी भाँति नूतन और नवीन रहता है। देशके नवयुवकोंसे मेरा निवेदन है कि तुम उससे साक्षात् करो, तुम्हें राष्ट्र-निर्माण करने की नयी रचना-शक्ति प्राप्त होगी।

मैं नम्रतासे कहता हूँ कि भारतके भविष्यकी जड़ें उसकी आत्माके सजीव आदर्शोंमें होनी चाहिये। वे आदर्श अनुदार और हीन नहीं हैं—हम ही अधम हैं। उन्हींकी आराधना करनेमें भारतकी वह आशा है जिससे वह आनेवाले युगमें सारे संसारके उद्धारके लिये अपना ईश्वर-निश्चित कार्य कर सकेगा।

युद्धसे खिन्न पाश्चात्य देश आशा और शान्तिके सन्देशके लिये प्राच्य ज्ञानकी ओर निहार रहे हैं। यह सच है कि पाश्चात्य देशोंमें ऐसे अधिक मनुष्य नहीं हैं जिन्हें प्राचीन और अर्वाचीन भारतका यथेष्ट ज्ञान हो; फिर भी यूरोप और अमेरिकासे एक आवाज उठ रही है कि शक्तिका नया मंत्र पूर्वसे ही घोषित होगा। प्राचीन कालके चीनी और जापानी साधु विद्वानोंकी भाँति आजकल अनेक मनुष्य भारतको ईश्वर-निर्दिष्ट आशा-क्षेत्र मानकर प्रतीक्षा कर रहे हैं। एक फरासीसी लेखक लिखता है:—

"आधुनिक भारतका जो हाल हमें पत्रपुस्तकादिके द्वारा मिलता है वह बहुत ही थोड़ा, बनावटी और दूसरोंके द्वारा प्राप्त है। वह भारतवासियोंसे नहीं, वरन् उन सूत्रोंसे मिलता है जिनका उद्देश्य सत्यको फैलाना नहीं है। जो वृत्तान्त हम यात्रियों, उपन्यासकारों या पादरियोंसे पाते हैं वह बहुधा एकांगी और कपोल-कल्पित रहता है। इतना होते हुए भी यूरोपवासी भारतवर्षको एक ईश्वरीय देश—भगवान्का लीलाक्षेत्र—समझते और उसे राष्ट्रोंके बीच ईसा-मसीहके समान मानते हैं। पाश्चात्य जातियोंके हृदयमें

भारतका आज वह स्थान है जो क्रूसेड्स (ईसाईयों और मुसलमानोंके बीचके धर्मयुद्ध) के पहिले ईसाईयोंकी दृष्टिमें पेलिस्टाइनका (महात्मा ईसाके लीलाक्षेत्रका) था।"

आज यूरोप खिन्न और घायल पड़ा हुआ है । इटालीके विख्यात राज नीतिज्ञ फ्रेन्सिसको निटी यहाँ तक कहते हैं कि "सारा यूरोप पतनोन्मुख है।" वे लिखते है—"प्रतिदिन यूरोप विनाशकी ओर अग्रसर हो रहा है।' मै यूरोपकी हालतपर जितना अधिक विचार करता हूं उतना ही मेरा विश्वास दृढ़ होता जाता है कि नवीन ईश्वरीय प्रेरणाके लिये यूरोपको भारतीय सभ्यताकी शरण लेनी पड़ेगी। भारतीय संस्कृतिमे आध्यात्मिकताका स्थान सर्वोच्च है। पाश्चात्य शिक्षाके दो अङ्ग—वैज्ञानिक और साहित्यविषयक (Classical)—वर्तमान भारतके लिये उपयोगी है। किन्तु पाश्चात्य ज्ञान और पाश्चात्यतामें जो अन्तर है, उसे हमे समझना होगा। भारतमे दोनोंका संकर हो गया है और बहुत से शिक्षित युवक प्राचीन आदर्शोको जातिके शैशव-कालके रूढ बेकाम ढकोसले ही समझते है। पाश्चात्यताने बहुतोंको उस नीच जड़वादमें दीक्षित कर दिया है जो आत्माको प्रकृत और नाशवान् मानता है। मै कभी कभी सोचता हूँ कि पाश्चात्य राजनीतिमे जो हिंसाका मान्य स्थान है, वह इसी अनात्मवादके कारण ही है। पाश्चात्यताने यह सिखलाया है कि भौतिक क्षमता ही उन्नतिका प्रधान द्योतक है और दूसरोकी हत्या करने तथा गरीबोंको लूटनेका सामर्थ्य ही सभ्यता है। प्राचीन भारतमे संस्कृतिका राज्य था, परन्तु जिस दिनसे उसने राष्ट्रीय जीवनको प्रभावित करना छोड़ दिया और अकर्मण्यताको लोग धर्म समझने लग गये, उसी दिनसे भारत-का पतन प्रारंभ हुआ। पाश्चात्य शिक्षाने हमे तन्द्रासे जगा दिया, किन्तु पाश्चा-त्यताने हममे अपनी जातिके ईश्वरदत्त गुणोंके प्रति श्रद्धा उत्पन्न न होने दी और हम प्राचीन आदर्शोंके महत्त्वको न समझ सके। हम एक अंधकारमय युगसे निकलकर फिर अनुकरणके अज्ञानान्धकारमें घुस गये। अनुकरणने हमें यंत्र, धन और विषयोंकी उपासना करनेका उपदेश दिया। हम फोर्डके कथनानुसार भूल गये कि "वस्तुएँ वहीं तक उपयोगी है जहाँ तक उनसे हमारा जीवन स्वतंत्र बन सके—वे एक महान् ध्येयकी सामग्री मात्र हैं।" यंत्रवाद और अर्थवादको लेकर पाश्चात्यताने भारतके आदर्शको—अनन्त

यौवनके आदर्शको–कुचल डाला। आज हम सर्वत्र क्या देख रहे हैं? अनु-करण। अनुकरण दमन है। वर्तमान शिक्षा-प्रणालीमें रचना-शक्ति नहीं है। हमारी राष्ट्रीय राजनीति तक अनुकरणप्रधान है–रचनात्मक नहीं।

२

बड़े आश्चर्यकी बात है कि एक एंग्लो इण्डियन समालोचक समझते हैं कि प्राचीन आदर्शोंको युवकोंके सामने रखना बड़ी गलती है। वे कहते हैं– "प्राचीन आदर्श उन्हे उस हीनदशाको पहुँचा देंगे जहाँसे उद्धार होना कठिन होगा।" समालोचक महाशय यह भूल जाते हैं कि वे आदर्श नौकर-शाहीके हैं जिनसे कि भौतिक और नैतिक दोनों पतन होते हैं। भारतवर्षके शासनमें बहुत अधिक खर्च पड़ता है, इस वास्ते कि वह जनसाधारणकी इच्छाके अनुकूल नहीं है। बड़े बड़े पदोंमें बहुतसे धनका अपव्यय होता है। सेनाविभागमें ही देशकी इतनी अधिक आयका व्यय किया जाता है कि शिक्षा, सफाई अथवा कृषिसुधारके लिये कुछ भी शेष नहीं रहता। विदेशी सरकारकी आर्थिक नीतिने साम्राज्यके हितोके लिये भारतके हितोंका बलिदान कर दिया है और देशभरमें लूट मचा रक्खी है। नैतिक दरिद्रता भी सर्वत्र फैली हुई है। सम्मान और उत्तरदायित्वके बहुत अधिक पद यूरो-पियनोंके हाथमें ही है। भारतीयोंको रचनात्मक कार्य करने, उन्नतिशील बनने और नेतृत्व दिखलानेका अवसर नहीं दिया जाता। उच्चकोटिके भार-तीयोंको भी मामूली साहबके सामने सिर झुकाना पड़ता है। दासत्वकी प्रवृत्ति उत्साहित की जाती है।

जिस दिन भारतको स्मृति-लाभ होगा और अपनी वास्तविक आत्मा तथा अपनी पूर्वकृत सिद्धियोंका परिचय मिलेगा, उसी दिन भारत सच्ची स्वतं-त्रतासे गौरवान्वित हो राष्ट्रोंकी पंक्तिमे बराबरीका स्थान प्राप्त करेगा।

मैं निषेधवादका पक्षपाती नहीं हूँ। हमें वर्तमान परिस्थितिको ध्यानमें रखना ही होगा। आधुनिक जीवनमें भी कई ऐसी बातें है जिन्हे अपने राष्ट्रीय जीवनको उपयोगी बनानेके लिये हमें समझना और अपनाना पड़ेगा। किन्तु उसमें ऐसी अनेक बाते है—जैसे उसका हृदयहीन जडवाद, संकीर्ण सांप्र-दायिकता, धन-उपासना और ईश्वरकी दैनिक अवहेलना—जिन्हें ठुकराये

बिना भारतको आत्म-ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता और हम मनुष्यमात्रकी सच्ची सेवा करनेमें समर्थ नहीं हो सकते।

जो आदर्श मै भारतके नवयुवकोंके सामने रखना चाहता हूँ वह मनुष्य-मात्रके विरुद्ध विद्रोह करनेको नहीं कहता; वरन् एक अनीश्वरीय सभ्यताके विरुद्ध क्रान्ति करनेके लिये उन्हे उत्साहित करता है। उस सभ्यतापर आज शैतानका शासन है। मनुष्यमात्रके नामपर मैं उस यन्त्र-प्रधान सभ्यताकी बुराइयोंका विरोध करता हूँ। भारतके नवयुवक पश्चिमीय देशोंके माया-जालमे न फॅस जावें। कई वर्प पहिले फ्रेडरिक हेरिसनने कहा था "जैसा पतन रोमके विशाल साम्राज्यका २०० ईस्वीमें हुआ था, वैसे ही पतनके पथपर इंग्लिस्तान अग्रसर हो चुका है।"

मेरा आग्रह है कि हिन्दू-आदर्शोंका अध्ययन नयी रीतिसे किया जाय। बड़े दु खकी बात है कि वहुतसे पश्चिमी समालोचक हिन्दू-धर्मको निरा जीववाद समझ बैठे हैं। मै नम्रतासे कहता हूँ कि हिन्दू-आदर्शको तथा रीति-रिवाजके कर्मकाण्डको कदापि एक न समझो। हिन्दू-आदर्श कोई जाति नहीं, कोई मत नहीं और न कोई सम्प्रदाय ही है। हिन्दू-आदर्श वह शक्ति है, जिसका विकास मोक्ष-धर्म है। इस धर्मका आदेश सेवा और स्वार्थ-त्याग है। अत्यन्त खेदका विपय है कि इस धर्मके मार्मिक तत्त्व उन लोगोमेंसे अधिकांश नहीं जानते जो कि अपनेको हिन्दू कहते हैं। बुद्ध और महावीरको मै हिन्दू-आदर्शका विरोधी नहीं, वरन् प्रतिनिधि मानता हूँ। यदि गंभीर दार्शनिक दृष्टिसे देखा जाय तो बौद्ध-धर्म तथा जैनधर्म वास्तवमे हिन्दू धर्मसे ही उत्पन्न हुए है। अखिल हिन्दू-आन्दोलनमें बौद्ध और जैनका स्थान अवश्य होना चाहिये। किन्तु आज हम क्या देख रहे है? शोक! प्राचीन पुनीत हिन्दू-आदर्श आज हिन्दुओंके मन्दिरोंमे ही पददलित हो रहा है। कितने मंदिरोमे श्रीकृष्णकी वंशी बज रही है? कितने मन्दिरोंमे राक्षस नृत्य कर रहे हैं?

फिर भी मेरा विश्वास है कि भारतमें एक बार फिर वृन्दावन-विहारीकी मुरलीकी तान सुनाई पड़ेगी। मै एक पुनर्जागृतिकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। वह जागृति प्राचीन ग्रीसकी जागृति अथवा माइकेल एन्‌गलोके समय

(१४ वीं तथा १५ वीं सदी) की इटालीकी जागृतिसे कहीं अधिक महान् होगी। मेरी धारणा है कि भवितव्यता भारतको एक महान् स्वार्थ-त्यागके यज्ञकी ओर ले जा रही है। उस यज्ञकी विभूतिसे एक नवीन भारतका उत्थान होगा। उस जाग्रत् भारतके मुखपर, बालसूर्यकी किरणोंके समान, स्वतन्त्रताका प्रकाश होगा। एक हाथमें पुरातन ज्ञान और दूसरे हाथमें आधुनिक-विद्या (Science) को लिये हुए भारतमाता संसारको दर्शन देगी। मैं जानता हूँ कि आज बहुत ही कम मनुष्य ऐसे हैं जो अपने दैनिक जीवनमें प्राचीन आदर्शके सौन्दर्यका अनुभव करते हैं। बहुतसे उन्हीं महापुरुषोंकी अधम सन्तान हैं, जिन्होंने पूर्वकालमें भारतको आदर्श देश बनाया था। विश्वास रक्खो, प्राचीन समयके ब्राह्मण साम्प्रदायिकता अथवा मतादिकी संकीर्णतासे परे थे। वे प्रेम और सत्यके उपासक थे। वे अनुदार कर्मकाण्डी नहीं थे। भारतके महापुरुषोंको देखो। राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर कोई भी ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न नहीं हुए। फिर भी समय आनेपर ब्राह्मणोंने इन अब्राह्मण महापुरुषोंको अवतार—अनंतब्रह्मके अवतार—मानकर स्वीकार किया। भारतके सिवाय दूसरे देशोंके लोगोंने महापुरुषोंको नाना प्रकारके कष्ट दिये। ईसा मसीहको शूलीपर चढ़ा दिया, मुहम्मदको भागकर मदीनेमें शरण लेनी पड़ी, मंसूरको फाँसीपर लटका दिया, ब्रूनो और सावोनारोला जीते ही जला दिये गये। किन्तु भारतमें ईश्वरके नामपर कभी दमन और अत्याचार नहीं किये गये, धर्मके नाम पर ज़िद् कदापि नहीं की गई। ब्राह्मणोंने ईश्वरके अनेक नाम रक्खे। उनमेंसे एक था—सत्य। प्राचीन कालके ब्राह्मणोंने जहाँ कहीं सत्यको पाया, वहीं उसकी उपासना की। विज्ञान और औषधकी शिक्षा उन्होंने ग्रीसवासियोंसे कितने हर्षके साथ ग्रहण की थी!

इसी सत्यप्रेमके साथ—जो इतिहासमें दुर्लभ है,—ब्राह्मणोंने उस समय प्राचीन ज्ञान-भंडारकी रक्षा की, जब इस देशको संकट और अत्याचारने ग्रसित कर लिया था। जब दमन तथा अत्याचार अत्यन्त क्रूर और असह्य प्रतीत हुए तब उन्होंने निर्जन एकान्तकी शरण ली और वहाँपर प्राचीन-ज्ञानकी ज्योतिको जीवित रक्खा। मेरा विश्वास है कि वही ज्योति—वही ज्ञान, सारे राष्ट्रोंको सन्मार्ग दिखलावेगा। उस ज्ञानकी प्रधान शिक्षा है—आत्माका तत्त्व। ज़ोहर (Zohar) नामके एक यहूदी ग्रन्थमें लिखा है "जब सब कुछ

ईश्वरमें ही विद्यमान था, तब ईश्वर एक गूढ रहस्य था। उस समय उनका कोई नाम नहीं था। तब उनके लिये उचित सम्बोधन था–कौन ?" जिसे यहूदी लोग "कौन ?" कह कर पुकारते थे, उसी परमेश्वरको भारतके प्राचीन दार्शनिकोंने अपने हृदयमे, प्रकृतिमे तथा मनुष्यमात्रमें स्वयंप्रकाशित आत्मा कह कर अनुभव किया था। वर्तमान संसारको आवश्यकता है इस संदेशकी कि "नवजीवन और नूतन शक्तिके लिये परमात्माके निकट जाओ, आत्माकी शक्तिमें ही दुःख और नैराश्यमें भटकती हुई मानवजातिके त्राण की आशा है।"

—टी० एल० वास्वानी

प्राचीन-दिग्दर्शन
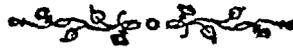
प्राचीन सन्देश और वर्तमान युग

वर्तमान संसार तीन महापरिवर्तनोंके लिये प्रसिद्ध है:—१ वैज्ञानिक-परिवर्तन, २ राजनीतिक-परिवर्तन, ३ औद्योगिक-परिवर्तन।

१ वैज्ञानिक परिवर्तन। बाष्प (भाफ) और विद्युत्से काम लिया जाता है। हम अल्प समयमें समुद्र पार कर सकते है। रेलगाड़ीद्वारा शीघ्र यात्रा कर सकते है। मोटरे है, समुद्र तकमें तार लगे हुए है। बेतारके तारसे थोड़े समयमें बहुत दूर तकके समाचार माळूम हो जाते है। टेलीफोनके द्वारा आप न्यूयार्कमें रहते हुए अटलांटिकके उस पार सुदूर लंडनसे बाते कर सकते है। विज्ञानने संसारमे कितनी उन्नति कर दी है! प्रकृतिके नियमका सिद्धान्त दृढ हो गया है—नयी प्राकृतिक शक्तियाँ खोज निकाली गई है और अद्भुत शक्ति उत्पन्न हो गई है। लेकिन शक्तिका सदुपयोग भी होता है और दुरुपयोग भी। विज्ञानसे हानिकारक कार्य भी सम्पादित होते हैं और वह हिंसक भी बन सकता है। आप विज्ञान-पारंगत राष्ट्रोंपर दृष्टि डालिये। उन्होने नाशकारिणी विद्या सीख ली है और वे दीन ग्रामीणोंपर हवाई-जहाजोंके द्वारा बम फेकते है। निरा विज्ञान ध्वंस और विनाशके लिये तत्पर भयंकर दैत्यके समान है। विज्ञानने ऐसी विषमता और कठिन परिस्थिति उत्पन्न कर दी है कि मनुष्य उसके बोझसे दबा जा रहा है। विज्ञानने हमारे शारीरिक बलको अवश्य बढ़ा

दिया है, किन्तु वह बल दुराचार और विनाशके काममे भी लाया जा सकता है।

आत्म-ज्ञानसे विज्ञानका शासन होना चाहिये। प्राचीन-कालमे भारतने संसारको आत्माका संदेश सुनाया था। एक धर्म-ग्रन्थमे यह भली भाँति दर्शाया है कि आत्मा अद्वैत है—उसके कोई वर्ण नही है। इसे आज फिर दुहराना होगा। यह सन्देश उन पवित्र महान् आत्मावाले ऋषियोने सुना जो कि प्राचीन भारतकी सरल, सबल और संस्कृत सभ्यताके निर्माता थे। विश्वव्यापी अनन्त चैतन्य सृजनात्मक जीवन—जो कि प्रकृति, मनुष्यता और आत्माकी ओर प्रवाहित होता है—उसी जीवनकी शान्तिपूर्वक उपासना करते हुए प्राचीन आर्य ऋषियोंके कानोमे इस सन्देशकी झंकार पड़ी थी। इसी दिव्य संदेशके प्रकाशमे यन्त्रवादकी युक्तियोकी परीक्षा होनी चाहिये। यंत्रवादकी युक्तियाँ वास्तवमे विकासवादकी युक्तियाँ नही है। वह संसारका सच्चा चित्र कदापि नही कहा जा सकता जहाँ कि टुकड़े बिना सामञ्जस्यके दिखलाये जावें। यह एकीकरण, यह समष्टीकरण आत्माद्वारा होता है। यन्त्रवादकी युक्ति इस जीवित जाग्रत् विश्वकी व्याख्या नहीं कर सकती। वह विज्ञानको मानव-जातिकी सेवा करनेमे सहायता नहीं दे सकती।

२ राजनीतिक परिवर्तन। पाश्चात्य देशोमें बड़ी बड़ी राजनीतिक क्रान्तियाँ हो चुकी है। फिर भी कितने देश गौरवके साथ यह कह सकते है कि हमारे पास श्रीरामके समयकी आदर्श पंचायतोके समान मन्त्रिमण्डल है जिनमें कि आठ मंत्रियोमेसे दो मत्री ब्रह्मज्ञान और आर्य-विद्याओमे पारंगत महात्मा होते थे? यूरोपमे स्वाधीनताकी महत्त्वाकाक्षा है; किन्तु जब वह आकाक्षा पूर्वीय देशोपर शासन करनेकी वासनामे परिणत हो जाती है, तब यूरोप अपने ध्येयसे विमुख हो जाता है।

शासन-लालसा ही यूरोपका भीषण रोग है । एक फरासीसी लेखक लिखता है "मनुष्योंके दलके दल लूटे जाते है, उनका दमन और अपमान किया जाता है और उन्हे भूखसे व्याकुल कर मृत्युकी गोदमे ढकेल दिया जाता है।" साम्राज्यवाद यूरोपके भीषण रोगका एक विकृत रूप ही है। यूरोपमे साम्राज्यवादने पूँजीपतियोकी सभ्यताको उत्पन्न किया जिसमे एक ओर असीम विलास और दूसरी ओर भीषण दरिद्रता है। साम्राज्यवादमे जातिभेदका भाव घुसा हुआ है। पूर्वीय देशोंके लिये ब्रिटिश साम्राज्यवादका अर्थ आर्थिक लूट तथा जातीय प्रभुताका दर्प ही है। एक फरासीसी समालोचक लिखता है—"शायद ही कोई पश्चिमीय भारतमें इस वास्ते जाता है कि वहाँ जाकर शिक्षा प्राप्त करे, ईश्वर-भजन करे, वहाँके लोगोसे प्रेम करे और अपनी त्रुटियोको वहाँ जाकर सुधारे। जो वहाँ जाते है वे समझते है कि हम भारतवासियोंसे सब बातोमे श्रेष्ठ है। किन्तु सच बात यह है कि वे केवल दूसरी श्रेणीकी थोड़ीसी बातोमे भारतीयोसे अधिक सिद्धहस्त है—औरोमे नही।" अहंकार पतनकी निशानी है। वह सभ्यता जिसका परिचय हमे अँग्रेज़ कर्मचारियो या पादरियोसे मिलता है यथार्थमे अहमितिसे परिपूर्ण है।

यूरोपका स्वातन्त्र्य-प्रेम आज हिंसाके दैत्यकी उपासनामें परिणत हो गया है। यदि आज हम यूरोपके प्रजातंत्र-राज्योको आततायी राष्ट्रीयता और जातीय द्वेषसे ग्रसित पाते है, तो इसमे आश्चर्य ही क्या है? उन्हे शक्तिका नैतिक सदुपयोग कौन सिखलावेगा? प्रजातंत्रके अधिष्ठाताको वे नेत्र कहाँसे प्राप्त होगे जिनके द्वारा वह धर्मको राजनीतिसे तथा मनुष्यताको राष्ट्रीयतासे अधिक उन्नत देख सकेगा? प्रोफेसर फ़ेरेरो—जिन्होंने यूरोपकी पारिस्थितिका भली भाँति अध्ययन किया है—कहते है—"केवल सदाचार—नीतिका विधान ही यूरोपको अराज-

कतासे बचा सकता है।" यूरोपको नूतन नैतिक दृष्टिकी अत्यन्त आवश्यकता है। यूरोपमे उस उदार भावकी कमी है जिससे वह समस्त संसारको एकरूप समझ सके। इसी आदर्शकी—कि सब जातियोंमे, सब राष्ट्रोमे, एक ही परमात्माका निवास है, सबमे एक ही दैवी मनुष्यताका अस्तित्व है, इसी ज्ञानकी—आज पाश्चात्य प्रजातत्र राष्ट्रोको करुण आवश्यकता है।

३ औद्योगिक परिवर्तन ।—यह उद्योग धन्धोका युग है। यन्त्रोने उपजको बहुत अधिक बढा दिया है। बड़े बड़े नगरोको देखिये, असख्य यंत्र है; किन्तु वहाँ मनुष्य यन्त्रोके अधीन प्रतीत होता है। कितना ऐश्वर्य है! किन्तु उसमे गरीबोकी आहे और आँसू मिले हुए है। टूटी मैली झोपड़ियाँ है—भीषण दरिद्रता फैली हुई है। हालमे जो प्रदर्शिनी वेम्ब्लेमे हुई थी वह एक प्रकारसे पाश्चात्य सभ्यताके पराजयकी द्योतक थी। इस सभ्यताको अभिमान है अपनी विशाल तोपोका, जो नाशकारी शक्तिकी निशानी है। इस शिल्प-वाणिज्यने जाति-विग्रह, सामाजिक-हानि और आर्थिक दासताका ही प्रचार किया है।

प्राचीन आदर्शकी समालोचना करते हुए एक महाशय कहते है—

"उसमे वे आराम और सुविधाएँ नही है जिन्हे कि आज हम लोग जीवनके लिये साधारणतः अनिवार्य मानते है। वहाँपर लोहेकी जंजीरोने व्यक्तिगत तथा सामाजिक कार्यप्रवृत्तिको सब तरफसे बाँध रक्खा है।"

कितना मिथ्या कथन है! यदि आप सुविधाका अर्थ 'भोग' मानते हो, तो यथार्थमे प्राचीन आदर्शकी आचार-प्रणालीमे उसका स्थान नहीं है। यह बात ठीक है कि भोग-विलासकी सामग्रीका आज भारतमे ढेर लगाया जा रहा है; पर इसका परिणाम क्या हुआ है? इन्द्रियोको

क्षणिक सुख मिलता है; किन्तु अन्तरात्मा धीरे धीरे निर्बल होती जाती है। सुखका वास विलासमे नहीं, वरन् सरल जीवनमे है। प्राचीन इतिहासको ऊँचा दिखानेकी कपोलकल्पनाप्रधान मतिसे नही, वरन् सच्चे सुदृढ विश्वाससे मै कहता हूँ कि आर्यकालमे भारत आजसे कहीं अधिक सुखी था। यूरोपीय समालोचक गलतीसे आर्यकालको संकीर्णता-प्रधान युग समझ बैठते है। स्वतंत्रता—व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक—केवल वर्तमानकालका ही गुण नही है, आर्य आदर्शमे भी उसे उच्चस्थान प्राप्त था। क्या स्वतंत्रता आध्यात्मिकता तथा सरलताकी श्वास नही है? आत्मबोध, न कि अनुकरण, भारतको सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त करा सकेगा। आधुनिक चीनके सम्बन्धमे एक पाश्चात्य समालोचक लिखते है कि "कोई पन्द्रह वर्ष हुए जब चीनने पाश्चात्य यन्त्रोको अपनाया था। उसी समयसे उस देशमे अशान्ति और अराजकताका अधिकार जम गया है। आजकल जिसे लोग सभ्यता कहकर पुकारते है, उसमें अधिकांश अराजकता ही है। लोभ और भोग उस सभ्यताकी प्रधान प्रवृत्तियाँ है। आर्यकालमे ज्ञान और तपस्याका स्थान उच्च था। इतिहासके शैशवकालमे इन्ही महागुणोके कारण भारत संसारका अग्रणी बना था। लोभ और भोगने प्राचीन ग्रीस और रोमका नाश कर दिया और वही आज यूरोपको भी जर्जरित कर रहे है। भविष्यके इतिहास-लेखक हमारी शताब्दिको पाश्चात्य देशोके पतनकी शताब्दि कहेगे। यदि भारत यूरोपका अन्ध अनुकरण करने लगे तो उसका पतन और भी अधिक भयंकर होगा। शक्तिमे, सरलतामे, आध्यात्मिकतामे आर्यकाल वर्तमान युगसे कहीं अधिक उन्नत था। उस समय आर्यावर्तने जीवनके एक ऐसे उदार समन्वयकी शिक्षा दी थी, जिसका प्रभाव अनेक देशोपर पड़ा था।

आजकल संसारके समस्त देशोको,—भारतको भी,—आर्यावर्तके प्राचीन संदेशकी, ऋपियोके सदुपदेशकी आवश्यकता है। मैं सहर्ष यह मानता हूँ कि आधुनिक पाश्चात्य देश महागुणोसे सर्वथा हीन नहीं है। उनके दो प्रधानगुण है—विज्ञान और स्वातंत्र्य-प्रेम। स्वतंत्रता एक पवित्र गुण है; किन्तु आध्यात्मिकताके बिना स्वतत्रता भी अपने वास्तविक उद्देश्यको नही पा सकती। विज्ञान महत् है और भविष्यमे उसके द्वारा बड़े बड़े चमत्कार होगे; फिर भी सदाचारके बिना विज्ञानका क्या मूल्य है? प्राकृतिक शक्तियाँ? ठीक है, किन्तु उनसे भी बड़ी शक्तियाँ विद्यमान है—आत्माकी गूढ शक्तियाँ। पुरातन कालमें इसी आत्मबलकी उपासना भारतने की थी। आर्यावर्तने अन्तरात्माके आलोककी आराधना की और अपनी सरल पवित्र सभ्यताका विस्तार किया। उसका ध्येय आत्माका प्रबोधन था। आध्यात्मिक समष्टीकरण ही उसका आधार था। आर्य-जीवनका मूल तत्त्व ब्रह्मचर्य था—भोग नहीं। आर्य सभ्यताके अंतःकरणमे आध्यात्मिक संकल्पकी दृढ शक्ति थी। इसीसे आर्यपुरुष सरल, सबल और निर्भय होते थे। इसीने आर्यावर्तको संस्कृतिका पुण्यतीर्थ और मानव-धर्मका उपासना-मन्दिर बनाया था।

नवयुवकोके लिये मेरा यही सन्देश है-"उसकी स्मृति बनाये रक्खो।" वसन्त कालमे एक दिन मै उद्यानमे टहल रहा था। पुष्पोंसे प्रकृति शोभायमान थी। पक्षी-गण गा रहे थे। मैंने बुलबुलसे पूछा—"तेरे गानमें एक विचित्र शक्ति है—एक मर्मस्पर्शी आकर्षण है। इसका रहस्य मुझे समझा दे।" मेरे हृदयको बुलबुलका उत्तर इस प्रकार सुनाई दिया—"मेरी तानमे स्मृति भरी हुई है।" अपने दैनिक जीवनमे उन महर्षियोको और अपनी भारत-माताको स्मरण करो। तव तुम्हारे सब कार्योंमें—विद्याविषयक, सामा-

जिक, धार्मिक, राजनीतिक कार्योंमे——एक नवीन उत्साह और शक्ति-का आविर्भाव होगा। माताकी स्मृतिको जीवित रक्खो और रक्षा करो उन महात्माओंकी प्रतिभाकी जिन्होंने भारत-माताको संसारमे आशा और शान्तिकी मूर्तिमती देवी कहकर घोषित किया था। फिर ग्रामोमें जाओ, जहाँपर पुरुष और स्त्रियाँ आतुरतासे तुम्हारी बाट जोह रही हैं। दीन गरीबोंके पास जाओ और उन्हें आनेवाले उज्ज्वल महान् भारतका संदेश सुनाओ। जाओ और कठोर परिश्रममे फँसे हुए लोगोसे कहो कि वर्तमान कठिन नैराश्यको छोड़कर वे प्राचीन आदर्श-की प्रेरणाको समझें। इसी प्रेरणाने पुरातन समयमे आर्यावर्तको आदर्श देश बनाया था। यही भारतमे नव-जीवनका संचार करेगी। यही उसे जाग्रत् और सचेतन बनावेगी। यही उसे शक्ति और अनन्त यौवनसे सम्पन्न करेगी।
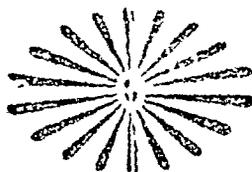
हिन्दू आदर्श

एक समय भारत महान् था। एक समय चीनी विद्वान् भारतको तीर्थस्थान समझकर यहाँ आते थे। प्राचीन सुसभ्य ग्रीससे भी दार्शनिक और पण्डितगण जगद्गुरु भारतकी अर्चना करने आया करते थे। उस समय भारत सभ्यता और संस्कृतिके शिखरपर विराजमान था।

ब्राह्मणोकी कीर्ति दूर दूर तक फैली हुई थी। पाइथागोरसको—जो कि ग्रीक दर्शनशास्त्रके एक जन्मदाता थे—ब्राह्मणोंकी संगतिसे बहुत लाभ हुआ था। पाइथागोरसके भ्रातृमण्डलकी व्यवस्था बुद्ध और ब्राह्मणोंके संघोका अनुकरण मात्र थी। एक प्रसिद्ध फरासीसी दार्शनिकने यह दिखलाया है कि ग्रीक दार्शनिक फिरोके विचारोपर ब्राह्मणोका कितना अधिक प्रभाव पड़ा था। हम जानते है कि फिरोने मिश्र आदि देशोमे भ्रमण किया और जब वह अपने देशको वापिस लौटा तब लोगोने उससे प्रश्न किया कि "तुमने सच्चे ज्ञानका रहस्य कहाँ प्राप्त किया?" फिरोने उत्तर दिया—"भारतवर्षमें।" भारतमे फिरोको एक ब्राह्मण साधुके दर्शन हुए थे जो कि नदीके तीरपर आश्रम बनाकर अनन्त ब्रह्मकी उपासनामें लीन था। जगद्विख्यात अरस्तूने विजयी सिकंदरसे जो सबसे अधिक बहुमूल्य वस्तु लानेको कहा था वह थी—भारतवर्षका एक विद्वान्। ज्ञानके कारण ब्राह्मण यशस्वी हुए। राजाओंको वे मन्त्रणा तथा उपदेश देते थे। यदि शासक-मण्डल जनताके प्रति अपने कर्तव्यसे विमुख होता तो वे उसकी भर्त्सना करते और उससे उत्तर माँगते थे। 'साधुओंद्वारा राज्यशासन' इस उच्च ध्येयकी प्राप्ति अनेक अंशोमे ब्राह्मणोके उन्नतिकालमे हो चुकी थी।

जब सारा संसार सत्ता और ऐश्वर्यके लिये झगड़ रहा था उस समय भारत आत्माके प्रभुत्वके पक्षमें खड़ा था।

भारतीय संस्कृतिका जन्म और विकास उस आत्मिक प्रतिभासे है जिसका समझना केवल मन और अनुभूतिसे परे है।

जिस सहजज्ञानको भारतने अपने जीवनके प्रत्येक अंगमे पहुँचाना चाहा, वह यह था कि "अखिल जगतमे एक ही ईश्वरीय जीवन-स्रोत प्रवाहित हो रहा है।"

आप भारतीय कला तथा पूजाविधिपर विचार करे। हिन्दू और बौद्ध मूर्तियाँ मामूली पत्थर नही है—जैसा कि बहुधा लोग मान बैठते है। वे मूर्तियाँ आदर्शकी प्रतिमाएँ है। वे उस आदर्शके लक्षणोंको दर्शाती है। हिन्दू धर्म तान्त्रिक, बहुदेवपूजक अथवा मूर्तिपूजक नहीं है। विश्वके अनन्त रहस्यका ध्यान करते हुए आर्य ऋषियोंने यह समझ लिया था कि परमात्मा अनाम है। ईश्वरकी व्याख्या करना नास्तिकता है। जो अनाम है, उसका बोध लक्षणोंसे ही हो सकता है। सम्राट् अशोकने जो पाषाण-स्तूप अपने सारे विस्तृत राज्यमे बनवाये थे वे आध्यात्मिक सम्राट् भगवान् बुद्धकी याद दिलाते थे। भारतीय कलामें एक सुन्दर लक्षणने—सृष्टि-कर्त्ताके पुष्प कमलने—स्थान पाया है। प्रातःकाल अरुणोदयके साथ ही साथ कमल-दल पुष्पित होते है—इसे हम 'विकास' कहते है। यह कथन सर्वथा झूठ है कि हिन्दू मूर्तिपूजक या पत्थरपूजक है। हिन्दुओंकी बुद्धि मूर्तिपूजा तथा बहुदेवपूजाकी बुद्धिसे कही अधिक परिष्कृत थी। एक प्राचीन धर्म-ग्रन्थमें इसे भली भाँति दर्शाया गया है—"गँवार कहते है कि ईश्वर जलमे है। मूर्ख अज्ञान कहते हैं कि ईश्वर जंगलों पहाड़ो और पत्थरोमें है, साधारण बुद्धिवाले ईश्वरका वास

स्वर्गमे मानते है; किन्तु जो सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी है वे विश्वात्माको ही ईश्वर मानते है।"

इसीलिये भारतीय दर्शन शास्त्रोमे, साहित्यमें, शिक्षा-प्रणालीमे, राजनीतिक संगठनमे——सर्वत्र——ब्रह्मज्ञानने स्थान पाया है। आर्यावर्तके ऋषियोने समस्त जीवनको इसी सिद्धान्तके आधारपर संगठित करनेका प्रयत्न किया है कि सबमे, सब कहीं, एक ही परम आत्माका निवास है।

वर्तमान संसारके लिये यह ज्ञान कितने अधिक महत्त्वका है? आज भारतमे बहुतसे लोग ऐसे है जो हिन्दू-मुस्लिम झगड़ोको देखकर निराश हो जाते है। हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यकी परीक्षा राजनीतिक दृष्टिसे—लेने देनेके मतलबसे—की गई थी। यदि यह ऐक्य बारबार विफल हुआ, तो इससे हमे आश्चर्य क्यो होना चाहिये? सच्चा और स्थायी ऐक्य इसी सिद्धान्तपर स्थापित हो सकता है कि हिन्दू और मुसलमान—दोनोका जीवन एक ही विश्वव्यापी विराट् चैतन्यका अग मात्र है। स्वराज्यके लिये आन्दोलन हो रहा है। उसका उद्देश्य क्या है? क्या हम घृणा या द्वेषके लिये अग्रसर हो रहे है? तो यह हमे निर्बल और निःसत्व बना देगा। द्वेषसे अराजकता उत्पन्न होती है। जिसे हम विदेशी कहते है वह भी सांसारिक जीवनमे हमारा साथी है। स्वराज्य-प्राप्तिका प्रयत्न तब ही महत्त्वपूर्ण हो सकता है जब हम यह समझे कि स्वाधीनताके लिये हम उन परमात्माके सेवककी भाँति अग्रसर हो रहे है जिनका उत्सव सौन्दर्य और स्वातंत्र्यकी रचना ही है। हम देखते है कि राष्ट्र परस्पर युद्धमे लगे हुए है। यूरोप द्वेषका निवास-स्थान है। राष्ट्रोका पारस्परिक शत्रुभाव तब तक दूर नही हो सकता जब तक कि उनमे यह विचार विकसित न हो कि एक ईश्वरीय जीवन ही समस्त राष्ट्रोका जीवन है। इस ज्ञानका

वर्तमान जीवनके कार्यों तथा संस्थाओंमें प्रवेश कराना ही नूतन राजनीतिका कर्तव्य है।

"सबमें एक ही परमात्माका निवास है," इस आभाससे दीन गरीबोंके प्रति भ्रातृभावका उदय होता है। यह भाव रक्षाका नहीं वरन् बन्धुत्वका होता है। आर्योंके एक प्राचीन ग्रन्थमे प्रजासत्ताकी पाँच आवश्यकताएँ लिखी हुई है। उनमे एक है एकता, और दूसरी है जनताके प्रति भ्रातृभाव। श्रीरामसे लेकर आज तक हमारे इतिहासके सर्वश्रेष्ठ महापुरुप वही रहे है जिन्होने दीनो और निर्धनोसे प्रीति रक्खी और उनकी सेवा की है। भगवान रामने अछूत भील जातिकी शबरीके बेर खाये थे। श्रीकृष्णको 'दीनबन्धु' कहलानेमे हर्प होता था। भगवान् बुद्धने ऐश्वर्यको त्याग दिया और वे भिक्षुओंके साथी बन गये। नानक आदि अनेक धर्मगुरु दीन दुःखियोको सदैव अपनाते रहे। श्रीचैतन्यने, जो ब्राह्मण विद्वान् थे, जातिके बंधनको तोड़ दिया और दीन गरीबोंकी सगतिमे वे सुखी हुए। यह बात बहुतसे लोग नही जानते है कि प्राचीन भारतमें गरीबो तथा रोगियोकी चिकित्साके लिये अनेकों सुसज्जित औपधालय थे। स्त्रियोके लिये भी उपयुक्त चिकित्सालय थे। पशुओंकी चिकित्साका भी पूरा प्रबन्ध था। क्या पशुगण हमारी दयाके पात्र नहीं है?

एक ईसाई-समालोचक इँग्लैण्डका भारतके प्रति "नैतिक उपदेश करनेका कर्त्तव्य" की बात कहते है। इसे पढकर किपलिंगके[1] 'श्वेतांगजातिपर भार'—इस कथनका स्मरण हो आता है। ये सब साम्राज्यवादियोके परिचित पुराने तर्क है।

---

१ यह एक आधुनिक अँग्रेज लेखक है, जिसके लेख साम्राज्यवादकी पुष्टि करते हैं।

मेरी धारणा है कि हर एक जातिके पास कोई न कोई विशेष गुण है। अँग्रेज़ जाति इससे वंचित नहीं है। किन्तु अँग्रेजी मनुष्यता और अँग्रेज़ी साम्राज्यवादमे जो अंतर है उसे हमे समझना चाहिये। साम्राज्यवाद भ्रातृभावमय सभ्यताके मार्गमे कठिन रुकावट है और उसकी नैतिक-शिक्षाके उद्देश्यके बारेमे तो हम जितना कम सुने उतना ही अच्छा है।

आगे चलकर यही ईसाई समालोचक कहते है—"अँग्रेज़ोका भारतमे अपने कर्तव्यके सम्बन्धमें जो विचार है वह यह है कि हम इच्छा और लालसाको उत्पन्न करे। भौतिक सभ्यतामे हमारा विश्वास है, चाहे वह नाशवान् ही क्यो न हो।" सच है, आधुनिक पाश्चात्य देश यंत्रादिको ही सभ्यताका तत्त्व मानते है, महात्मा ईसाके उपदशोको नही। ईसाई समालोचक महात्मा ईसाके इस उपदेशको—कि "धन्य वे है जो गरीब है"—भारतीय सिद्धान्तोकी बुराई करते समय भूल जाते है। यदि ऐतिहासिक दृष्टिसे देखा जाय तो पता लगेगा कि इँग्लैण्डने भारतके लिये जो कुछ किया है उसमे आकाक्षा उत्पन्न करनेसे कही अधिक स्थान वैज्ञानिक अविश्वास तथा भोगलिप्साका ही है।

ईसाई समालोचक कहते है कि "पाश्चात्य देशोका यह विश्वास है कि आकांक्षा ही विकासकी मुख्य जननी है।" यथार्थमे हिन्दू दर्शनका विश्वास ऐसा नहीं है। वह हमे सिखलाता है कि सृजनी शक्ति भोगकी वासनामे नही वरन् तपस्याके बलमे है। वेद आदि समस्त हिन्दूधर्म-ग्रन्थोमे तपस्या, आत्म-निग्रह और आत्म-त्यागपर ही अधिक जोर दिया गया है। वेदके नियमोके अनुसार प्रत्येक अध्यापकको ब्रह्मचर्यसे रहना चाहिये, अपनी इन्द्रियोको वशमे रखना चाहिये। मेरी धारणा है कि शंकराचार्यसे बड़ा दार्शनिक संसारमे आजतक पैदा नहीं हुआ। शंक-

राचार्यने अपने गीता-भाष्यमें सच कहा है कि जीवनके बन्धनोके कारण अविवेक, भोग और काम ही है।

मै पूछता हूँ कि क्या मानव-जातिके विकाससे हिन्दू-दर्शनका सच्चा सम्बन्ध नही है? महात्मा सुकरात, अफलातून (प्लेटो), प्रभु ईसा तथा संत फ्रांसिसको हिन्दूदर्शन ही अनुकूल और हितकर हो सकता है न कि भोगविलासका मत। ईसाई धर्मके एक आचार्यने कहा है कि "तपस्या ही पुण्यका मूल है।" मै निवेदन करता हूँ कि भोग मनुष्यकी आत्माको कुत्सित तथा विकृत कर देता है।

आगे चलकर ईसाई समालोचक भारतको इसलिये बुरा कहते है कि "भारतके सब धर्मोंने इच्छा-दमनका उपदेश दिया है।" वास्तवमें वह उपदेश इच्छा या आकांक्षाके नाशका नही, वरन् उसके दिशा-परिवर्तनका है। यह उपदेश केवल भारतवर्षके धर्मोंका ही नही प्रत्युत ईसा, सुकरात, अफलातून तथा अन्यान्य पाश्चात्य दार्शनिकोंका भी है।

समालोचक महाशयने हिन्दू आदर्शपर अपने जो विचार इस असत्य धारणापर रचे है कि भारतवासी केवल स्वप्न देखना ही जानते है—वे निरे काल्पनिक है। हिन्दुओंने तत्त्व-निरूपण अवश्य किया; किन्तु तत्त्वनिरूपण स्वप्न देखना नहीं है। ब्राह्मणोकी बुद्धि उन उन्नत शिखरो तक पहुँच चुकी थी जिनका अतिक्रम कदाचित् ही मनुष्यके समस्त इतिहासमें हुआ होगा। उनकी बुद्धिने बड़े बड़े दर्शनोंका विवरण और विस्तार किया। उनमेसे सर्वश्रेष्ठ दर्शन 'वेदान्त'के नामसे विख्यात है जिसकी उत्तमताने संसारको चकित कर दिया है। ब्राह्मणोंके मस्तिष्ककी रचनायें—साहित्य और कलाके क्षेत्रमे—अद्भुत और अनुपम है। रामायण, महाभारत, पाणिनिका व्याकरण, हिन्दू-तर्कशास्त्र आदि मानवी प्रतिभाके

कीर्ति-स्तंभ है। ब्राह्मणोकी बुद्धिने आकाशकी खोज की थी, जिसको आधुनिक विज्ञानवेत्ता 'ईथर' कहते है। ब्राह्मणोने मनोविज्ञान तथा शिक्षा-प्रणालीकी उपयोगिताको समझा था। उन्हींको आजकलके पाश्चात्य विद्वान् मनोवैज्ञानिक पृथक्करण, अनाविर्भूतका अभ्यास तथा मोन्तसोरी[1]की रीतियोके अनुसार फिरसे ढूँढ निकाल रहे है।

भारतमे अनेक दार्शनिक हुए हैं; किन्तु उनकी सारी शक्ति तत्त्वान्वेषणहींमे खर्च नही हुई है। हेरोडोटस[2]ने प्राचीन भारतीयोको 'सुवर्ण खोदनेवाली चीटी' कहा है। प्राचीनकालके अनन्तर भी हिन्दू लोग काश्मीरी शाल और ढाकाका मलमल इतना उत्तम तैयार करते थे जिसे देखकर रोमन महिलाओको ईर्ष्या और द्वेष होता था। भारतवासी भी सुदूर देशोमें प्रवास करते थे। उन्होने जावा तथा सुमात्रामे अपने उपनिवेश बनाये थे। एक प्राचीन इतिहाससे पता लगता है कि जावा द्वीपके एक मातारम नामक राजाने अपने ज्येष्ठ पुत्रको शिक्षार्थ दक्षिण भारत भेजा था। जब वह लौटा था तब अपने साथ तीन जहाजोमे भरकर भारतके शिल्पी तथा कला-कौशलके नमूने लेता गया था। हालहीमे एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, जिसमे प्राचीन रोमके व्यापार-मार्गोंका वर्णन है। उसमे लिखा है कि रोम और दक्षिण-भारतमे खूब व्यापार होता था। रेशम, मसाला, गोंद, शुकपक्षी, रत्न, मिर्च आदिके बदले रोम भारतको टीन, सीसा, सीप, काच, आदि देता था।

उन्होने हमारे इतिहासको ठीक ठीक नही समझा जो यह कहते है कि वह उद्दीपन उत्साह, जिसका विकास त्याग है, हमारी जातिके

---

१ मोन्तसोरी एक इटालियन महिला है, जो शिक्षणकलाका विशेष ज्ञान रखती है और जिन्होंने उसमें कई नयी रीतियोंका आविष्कार किया है।

२ हेरोडोटस (ईस्वी सन्से पूर्व ४९०–४२०) ग्रीस देशके एक विख्यात इतिहासलेखक थे। इन्होंने प्राचीन भारतवासियोका हाल लिखा है।

अनुभव अथवा आदर्शोंसे विरुद्ध है। ऋग्वेदको मनन कीजिये। आप देखेंगे कि अग्निकुलका अर्थ कवि और वीर दोनो ही है। त्यागी वीर कविको प्रतिभासित करता है और कवि दूसरोको वीर और पराक्रमी बननेके लिये उत्तेजित करता है।

समस्त हिन्दू-भारत प्रतिदिन किसका स्मरण करता है? रामका—आर्यावर्तके कर्मयोगी वीर रामका। जब एक हिन्दू दूसरेका अभिवादन करता है तब वह कहता है—राम! राम!! जब एक हिन्दू दूकानदार अपनी चीजोको तौलता है तब वह कहता है—राम! राम!! जब कोई हिन्दू जुलाहा करघा चलाता है तब वह कहता है—राम! राम!! जब हिन्दूका मृत शरीर श्मशानको लेजाया जाता है तब एक बार फिर दुःखीजन श्रीरामका स्मरण करते है—राम राम सत्य है।

हिन्दू-कला, साहित्य, पूजाविधि और इतिहास सब वीरता, साहस तथा त्यागके भावोंसे परिपूर्ण है। शिवाजीने पराक्रमको अपना धार्मिक कर्त्तव्य माना था। राणा प्रतापने स्वतंत्रताके युद्धको धर्मयुद्ध समझा था। उन्होने प्रतिज्ञा की और अपने वंशजोंको भी उसे पालन करनेके लिये बाधित किया कि जब तक राजपूत स्वतंत्र न हो जावें तब तक कोई भी विलास या आडंबरकी वस्तु काममे न लाई जावे। उन्होने सोने चाँदीके थालोंमे भोजन करना छोड़ दिया—पत्तलमे वे भोजन करते थे। कैसी वीरताके साथ राजपूत युद्ध करते थे! शिवाजीके नेतृत्वमे किसानोंने किस अद्भुत पराक्रमका परिचय दिया! अपने धर्म तथा गुरुओंके लिये सिक्खोंने किस त्याग और उत्साहसे समर किया!

यद्यपि ईसाई समालोचक हिन्दू आदर्शकी समालोचना करनेमे गलती करते है; किन्तु वह समालोचना वर्तमान हिन्दू-समाजके लिये उपयुक्त है।

हमने प्राचीन उन्नत आदर्शोंकी अवहेलना की है । मैने अनेक मनुष्योको यह कहते सुना है कि "हमे ऋषियोका अभिमान है।" मेरी इच्छा होती है कि उनसे पूछूँ कि क्या ऋषियोको तुम्हारा अभिमान है ? जर्मनीमे मैने एक ब्राह्मण लडकेको मांस खाते हुए देखा । इँग्लैडमे मैने एक क्षत्रिय नवयुवकको एक अँग्रेज रमणीके साथ कुत्सित जीवन व्यतीत करते हुए पाया । बर्लिनमे एक महिलाने मुझसे पूछा-कि आप कहाँसे आये है ? मैने उत्तर दिया—भारतसे । अबतक उस महिलाने भारतको जंगली और असभ्य जातियोका देश मान रक्खा था । एक प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् जापान गये थे । उन्होने कहा—मै जापानको भारतका सन्देश सुनाने आया हूँ । कुछ जापानी लोग बोल उठे—"भारतवर्ष तो ससारके राष्ट्रोके बीच श्मशानकी तरह है।" आज इस प्राचीन देशमे जीवन कहाँ है ? जिस देशमे सात करोड़ अछूत हों, क्या वह देश कभी श्मशानसे अच्छा कहा जा सकता है ?

लगभग एक शताब्दि वीत गई जब कि अब्बे दुबोय साहबने अभागे अछूतोके संबंधमे लिखा था—

"सारे भारतमे सब जातियोके लोग परिया (अछूत) जातिके लोगोंको नीच समझते है और उनके साथ बहुत क्रूरताका व्यवहार करते है । वे अपने फायदेके लिये खेती नही करने पाते । वे दूसरी जातियोंकी गुलामी करते है और अल्प वेतनके बदले उन्हे कठिनसे-कठिन परिश्रम करना पड़ता है । उनके मालिक उन्हे चाहे जितना पीटे, उन बेचारोकी सुननेवाला कोई नही है । स्वामी द्वारा किये गये अत्याचारसे कोई भी उनकी रक्षा नही करता और न कोई इसका प्रतिकार ही करता है । वास्तवमे परिया जाति भारतकी आजन्मगुलाम जाति है । यदि मुझे इन दो कष्टप्रद बातोमेसे एक बात अगीकार करनी हो—

उपनिवेशोमें कुलीगीरी अथवा भारतमे परियाका जीवन—तो मै एक दम, बिना सोचे विचार, कुलीगीरी स्वीकार कर लूँगा।"

क्या यह कथन सर्वथा सत्य नही है? बीसवीं शताब्दिमे भी क्या उन अछूतोके साथ अच्छा वर्त्ताव किया जाता है? क्या १०० सालमे उनकी दशा सुधरी है? यदि ५० सालके भीतर इन अभागोमेसे दस लाख मनुष्योंने ईसाई-धर्म स्वीकार कर लिया, तो हमें आश्चर्य क्यो होना चाहिये?

यदि हमें प्राचीन ज्ञानकी सच्ची उपासना करना है, तो इन अछूतोकी शिक्षा तथा उन्नतिका गुरुतर कार्य हमारे सामने है। क्या भगवान् श्रीकृष्णके संबंधमें यह नही लिखा कि वे दीनबंधु हैं? प्राचीन भारतका आध्यात्मिक आदर्शवाद ऐक्य तथा भ्रातृभावकी पुकार कर रहा है। यह पुकार है—प्रकृतिसे मैत्री, दीनोसे बंधुत्व। इसी आदर्शसे उत्साहित नवयुवक ही देशकी आशा है। ऐसा एक विद्यार्थी वह था जिसने कोढियोंकी सेवा करते हुए अपने प्राण दे दिये। दूसरे ऐसे व्यक्ति थे सिन्धवासी साधु हीरानन्द, जिनको स्वर्गवासी हुए तीस साल बीत गये। वे ईश्वरके भक्त थे, गरीबोके सेवक थे। भारतके प्रत्येक विभागमे प्राचीन ज्ञानको दर्शानेवाले ऐसे ही नवयुवकोकी अधिकाधिक आवश्यकता है। वर्तमान ससारके रोगोके दूर करनेवाली अमोघ ओषधि एकता और भ्रातृभावका नवीन आभास ही है। इस आभासके संबंधमे एक प्राचीन साम-गान इस प्रकार है:—

आत्मा—अन्तरात्मा
सूर्यसे भी अधिक प्रकाशमान्
हिमसे भी अधिक पवित्र,
आकाशसे भी अधिक सूक्ष्म, है।

इसी आत्मा-अन्तरात्माकी हमने अवहेलना की है। ३२ करोड़ भारतवासियोंमेंसे ७ करोड़ अछूत है। इनकी संख्या भारतीय मुसलमानोंके बराबर है। अब आप हिन्दू-महिलाकी दशापर विचार करें। बंगालके स्त्री-समाजके संबधमें ये संख्याये १९२४ मे प्रकाशित हुई थी। इनसे स्त्री-समाजकी मर्मभेदिनी दुःखगाथाका पता सहजमे लग जाता है।

२५,००,०००—विवाहित कन्याये ऐसी है जिनकी अवस्था १० वर्षसे कम है।

१,३४,०००—पाँच वर्षसे छोटी विवाहित कन्याये है।

१४,०००—१ वर्षसे कम अवस्थाकी विवाहित कन्याये है।

१,१२,०००—ऐसी विधवाये है जिनकी अवस्था १० वर्षसे कम है।

१,७००—ऐसी बाल-विधवाये है जिनकी अवस्था ५ वर्षसे कम है।

१,०००—ऐसी दूधपीती बच्चियाँ है, जो विधवा हो चुकी है।

आवश्यकता है हिन्दू-आदर्शकी नवीन शिक्षाकी। आवश्यकता है हिन्दू इतिहासके सदेशको फिरसे समझनेकी। वर्त्तमान शिक्षा उन आदर्शोंकी चेतनाको जाग्रत् नहीं करती जिन्होंने प्राचीनकालमे भारतको सुखी और शक्तिशाली राष्ट्र बनाया था। यह शिक्षा गाती है कि "इँग्लैण्ड सदैव शासन करे—समुद्रपर भी उसका प्रभुत्व है।" वर्त्तमान शिक्षा यह नहीं कहती कि "भारतवासी कदापि दास नही रहेगे।" बहुतोंने 'कुरुक्षेत्र'को किताबी नाम मात्र मान रक्खा है; किन्तु वास्तवमे हमे उसे पुण्यक्षेत्र समझना चाहिये। इसी पवित्र भूमिमे भगवान् कृष्ण अर्जुनको रथमे बैठा कर लाये थे और यहीं उसे वीरता और कर्मयोगका ज्ञान

देकर उत्साहित किया था। हमारी पाठशालाओंमें 'साम्राज्य-दिवस' मनाया जाता है; किन्तु स्वदेशके वीरो तथा भक्तोकी जयन्ती मनानेकी कोई व्यवस्था नही है। विद्यार्थियोमे पुरुपार्थके गुण बढ़ानेके लिये कुछ भी प्रयत्न नही किया जाता।

क्या यह कोई आश्चर्यकी बात है कि हमारे विद्यार्थियो तथा नवयुवकोंकी शारीरिक निर्बलता दिनों दिन बढ़ रही है। एक समय था जब कि सिन्धवासी बलवान् होते थे। अँग्रेज यात्रियोंने उन्हे 'कट्टर सिन्धी' लिखा है। आज उनमेसे अधिकांश मुखमलीन है और चश्मा लगाकर बाबू बने फिरते है। प्राचीनकालमे भारतवासी धनुर्विद्या सीखते थे, आज हममेसे कितने तैरना व खेना जानते है? इस विस्तृत देशमे कितने अखाड़े है? जापानमे यह सिद्धान्त प्रसिद्ध है कि "जब जीवन उचित हो तब जियो, जब मरण उचित हो तब प्राण दे दो।" जापानी युवकोको निर्भय और साहसी बननेकी शिक्षा दी जाती है, लेकिन भारतीय विद्यार्थी भय और चिन्ताके वातावरणमे ही विचरते रहते है।

जापानमे एक संस्था है जो कि अपने सदस्योंको सामरिक शिक्षा प्रदान करती है। उसकी सदस्य-संख्या २० लाख है (जापानकी कुल-जनसंख्या ४१/३ करोड़के लगभग है) और उसकी शाखाये सारे देशमें फैली है। क्या हमारे भारतवर्षमे व्यायाम-सम्बन्धी एक भी अखिल-देशीय संस्था है? जेकोस्लोवाकियाके लोग पहली जुलाईको अपनी स्वतन्त्रताका दिवस व्यायाम आदिके प्रदर्शनके साथ बड़े समारोहसे मनाते है। हजारों स्त्री-पुरुष प्राग नगरमे इकट्ठे होकर राष्ट्रीय-मन्त्रका उच्चारण करते है। देशके सब भागोसे युवकोके दलके दल आते और अपना बल और कौशल दिखलाते है। प्रतिवर्ष व्यायामविषयक प्रदर्शनियाँ होती है जिनसे देशभक्ति तथा स्वतन्त्रताके भाव जाग्रत् होते है।

किन्तु हतभाग्य भारत ! तेरी क्या दशा है ? फिर भी मेरे हृदयमे आशा है, क्योकि नवयुवकोपर मुझे भरोसा है। मेरा विश्वास है कि भारतका उद्धार उसके नवयुवकोंद्वारा होगा। शर्त केवल एक है—उन्हे प्राचीन आदर्शकी शिक्षा और दीक्षा देनी चाहिये। देशके युवकोको उस मत्रकी आवश्यकता है जो उनके मनको भोग-विलासकी लालसासे हटाकर उन्हे शक्ति और त्यागमे दीक्षित करे।

भारतकी समस्या शक्तिसे हल हो सकती है। उस शक्तिका सर्वथा नाश नही हुआ है। वह दबी पड़ी है—कारागारमे बंद है। उसे प्राप्त करनेकी कुंजी है—दीन और गरीबोके प्रति आत्मीयताका भाव।

बार बार मुझे यह अनुभव हुआ है कि भारतके त्राता—स्वराज्यके निर्माता—बड़े बड़े आदमी, उपाधिधारी पुरुष, अथवा संकीर्णहृदय धनवान् लोग नही हो सकते। स्वराज्यके विधायक वही हो सकेंगे, जिन्होने स्वयं दरिद्रताको स्वीकार किया हो, जिन्होने सेवा और त्यागके निमित्त, धन, मान तथा सांसारिक सुखोको तिलांजलि दे दी हो।

जनसमूहमे शक्ति वर्त्तमान है। भ्रातृभावद्वारा उस शक्तिका उद्धार करो। कुलीनताका अभिमान हमारा विनाश कर रहा है। मेरा नवयुवकोसे निवेदन है कि अपने दैनिक जीवनमे विनयपूर्वक हिन्दू आदर्शका दर्शन करो। दलितो, दीनो, अछूतो और परित्यक्तोको अपनाओ। एक भक्तने भगवान्से पूछा—"हे कृष्ण ! तुम कहाँ हो ?" भगवान्ने उत्तर दिया—"मै जंगलमे नही हूँ, मै महलोमे नही रहता, मेरा निवास है दीन दुखियोकी झोपड़ीमे।" हिन्दू-धर्मके अनुयायियो, तुम्हारे भगवान् कृष्ण गरीब दुखियोकी झोपड़ीमे बसते है। वहाँ जाओ

और प्रेम तथा विनयके साथ उन्हें नमस्कार करो ! वहाँ जाओ और भगवान्की सेवा और आराधना करो ! मनुष्यके अंतःकरणमें विराजमान परमात्माकी उपासना करो और श्रीकृष्ण-साम्राज्यके आनेकी घोषणा कर दो !

पुरातन मुरली

समर्पण

—०—

प्राचीन भारतके उस

बाल-भक्त ध्रुवको—

जिसने अपने हृदयमे प्रेम

और भक्तिसे बिनती की कि

‘ हे कमलनयन भगवन् !

मै आपकी शरण हूँ—’

समर्पित

—टी० एल० वास्वानी

त्राताकी तान

१

उनकी मुरलीने मेरे हृदयमें एक कठिन ज्वाला उत्पन्न कर दी। उनकी दृष्टिने मुझे एकान्तवासी कर दिया। मेरे नेत्र उनके दर्शनके प्यासे हैं। मेरी आत्मा उनके नामका संगीत सुननेको उत्सुक है।

२

वे मंगलमय हैं! वे फिर आते हैं! फिर गाते हैं! मेरा अस्फुटित संगीत तारागणों और तरङ्गोंमें विलीन हो रहा है।

उनका सुखद गान सुनकर मेरा करुण क्रन्दन और शोक लज्जित हो रहा है।

३

मैं नदी-तटपर मिट्टीसे उनके सुन्दर रूपकी अनेक प्रतिमायें बनाता हूँ; किन्तु ज्यों ज्यों धीरे धीरे उनकी ध्वनि सुन पड़ती है त्यों त्यों मै उन्हें मिटा कर शीघ्रतासे उनके दर्शनार्थ भक्त-मण्डलीकी ओर दौड़कर जाता हूँ।

४

अहो दिव्य-दर्शन! मैं भगवान्‌को तपोवनमें गाते और मुस्कराते देख रहा हूँ।

वे सुगन्धित पुष्पोंका मुकुट धारण किये है और गोपियाँ प्रेम और भक्तिसे उनकी पावन परिक्रमा कर रही हैं।

५

उन्मत्त-नेत्रोंसे मैं जाग्रत्-स्वप्न देखता हूँ; किन्तु भगवान्‌के दर्शनसे तृप्ति नहीं होती। वे मुझे आशीर्वाद देते हैं और मृदु गीत गाते हैं—“तुम प्रेमी जन हो! जीवनके आवरणमें अंतर्हित भगवान्‌की सेवा करो!”

—टी० एल० वास्वानी।

प्रस्तावना ।
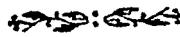
'श्रीकृष्ण' नाम ही एक संगीत है । उनका सौन्दर्य मनोहर था । उनकी मुरलीका संगीत अनुपम था । उनके हृदयमें वह पवित्रता थी जिसने मनुष्यमें दिव्यता दर्शाई और जिसके कारण अनेक गोपियोंने उन्हें अपना हृदयेश्वर माना । वे आये और उन्होंने अपने पुनीत आलोकसे सबको—पुरुषोंको, स्त्रियोंको, पशु-पक्षियोंको, वृक्ष, लता और पुष्पोंको, तारागणोंको—सबको सुखी और प्रफुल्लित कर दिया । हमारे इतिहासके एक संकट-कालमें अद्भुत प्रेम-प्रवाहके साथ भगवान् इस देशमें आये ।

अगले पृष्ठोंमें भगवान् कृष्णके संबंधमें मैं कुछ सरल शब्दोंमें कहूँगा । मेरा वचन सदा युवकोंके प्रति ही है । क्या देश अपने निश्चित ध्येयकी प्राप्तिके लिये अग्रसर होगा ? यदि हॉ, तो राष्ट्रके नवयुवकोंको सच्ची ऐतिहासिक भावनासे नाशहीन अतीतकालसे संबंध जोड़ना आवश्यक है । अपोलोनियस[1], प्लोटिनस[2] और क्लीमान्ट[3] (Clement) आदि महापुरुषोंने भारतको प्रतिभाका प्रभव माना था । आज भी यूरोप और अमेरिकाके अनेक विद्वान् भारतको पुण्यतीर्थ समझते हैं। उसके चिरकालव्यापी इतिहासमें बार बार महात्माओंने भारतभूमिको धन्य बनाया है । मैंने प्राचीन भारतके चार महापुरुषोंपर विशेष प्रकारसे ध्यान दिया है । मैं उन्हे आर्यावर्तके चार अवतार क्यों न कहूँ ? श्रीराम शक्तिके अवतार थे, श्रीकृष्ण प्रेमके अवतार थे, बुद्ध और महावीर दया और अहिंसाके अवतार थे ।

सत्य प्रमाणोंद्वारा साबित नहीं किया जा सकता । सत्य तर्कके बलपर घोषित नहीं किया जा सकता । नीरव एकान्तमें सत्यका बोध होता है । महापुरुषोंके वचनोंसे सत्य प्रकाशित होता है । महात्मा कविता, कहानी, सरल भाषण और गानसे सत्यका निदर्शन कराते है । ईसाने दृष्टांतोंसे उपदेश दिया, श्रीकृष्णने मुरली बजायी और उसकी तानसे जीवनके नैसर्गिक आद-

---

१—(४–९७) यह एशिया माइनरके एक विख्यात दार्शनिक थे ।

२—(२०४–२७०) आप इजिप्टके प्रसिद्ध दार्शनिक थे ।

३—(१५०–२२०) आप ईसाई धर्ममे प्रसिद्ध आचार्य थे ।

र्शको समझाया। मै उसे समन्वयका आभास कहता हूँ। उसमें एकता और भ्रातृभाव है। यह सुखमय आभास है-दुखी संसारको आज इसीकी आवश्यकता है। हालहीमे प्रकाशित नाटकका एक पात्र दूसरेसे प्रश्न करता है- "तुम सदैव काला कपड़ा क्यों पहनती हो?" वह उत्तर देती है-"यह मेरे जीवनका शोककाल है-मै दुखी हूँ।" आज अनेक दुखी है। उन्हें संजीवन और शक्तिके संदेशकी आवश्यकता है। "अपना अस्तित्व बनाये रखनेके लिये कठिन प्रयास और जीवन-कलह आवश्यक है" "वही जीवित रह सकेंगे जो कि सबसे अधिक क्षमता रखते है"-इन शिक्षाओंको लेकर डारविनके आशावादने संसारको महासमरसे ढकेल दिया। आज सभ्यता निष्प्राण सी पड़ी है। भगवान् मुरलीधर हमे एक नये जीवनका संदेश सुना रहे है-"तुम सब ईश्वरके हो, अक्षय सौन्दर्यमें तुम्हारा वास है, फिर क्यों प्रेमसे दूर भटकते फिर रहे हो? अपनी शक्तिको वैमनस्य, द्वेप, और कलहमे क्यों वृथा नष्ट कर रहे हो?"

श्रीभगवद्गीताका संगीत इसी मधुर मंत्रसे परिपूर्ण है। यह समस्त हिन्दू धर्म-ग्रंथोंका रस है-यह कथन यथार्थ है। लिखा भी है—"सारे उपनिपद् गौएँ है, ग्वाल-बाल दुहनेवाले है, पार्थ बछड़ा है, विशुद्ध बुद्धिवाले मनुष्य उस दूधको पीते है और गीता ही वह दूध है।"

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

वंशीधर भगवान्ने हमें गीतामे समष्टीकरणका संगीत सुनाया है। इसीमें सच्ची जीवन-शक्ति है। मैं नम्रतासे कहना चाहता हूँ कि यह समझना कि गीता हमे संसार छोड़ देनेको कहती है, सर्वथा झूठ है। गीता हमे यह बतलाती है कि किस तरह हम अहमितिको छोड़कर आत्माको पहिचाने, किस तरह माया और विकृतिको दूरकर हम आध्यात्मिक जीवनको अपनावे। भगवान्का गीत उन्नत जीवनके संदेशसे प्रतिभासित है। उच्च आदर्शवादसे गीता प्रेरित है—हीन तर्कविद्यासे नहीं। कृष्ण-संदेश उत्कृष्ट कर्मके आदर्शकी पुकार है।

मैं बहुधा सोचता हूँ कि पाप केवल एक ही है-प्रेमके विरुद्ध कर्म, पृथक्त्व भावका पाप। आधुनिक संसार प्रेमहीनताके रोगसे ग्रसित है। व्यवसाय और

उद्यम बहुत हो रहा है; किन्तु हाय ! उसका बहुतसा हिस्सा अहंकार और आततायीपनसे भरा हुआ है—वह जीवनकी विभूतिको पैरोंतले कुचल रहा है। वर्तमान व्यवस्था दीनोंके प्रति अनादर भाव रखती है। बोल्शेविज्मकी क्रांतिकारिणी शक्ति एक ऐसी व्यवस्था उत्पन्न करना चाहती है जिसमे कि आत्माकी अवहेलना है। ट्राट्जकी * "इंग्लैण्ड कहाँ जा रहा है" नामकी पुस्तकके अंतमें लिखता है "बोल्शेविज्म भौतिकवाद तथा अनीश्वरवादकी स्थापना करेगा।" राष्ट्र-संघ † अब तक निर्जीवसा है। लोकारनो (१९२४) की संधि पूर्वीय देशोंके प्रति पश्चिमके राष्ट्रोंकी साम्राज्यविषयक आकांक्षाओंको दृढ़ करेगी। हालहीमें प्रकाशित एक पुस्तकमें एक शिक्षाप्रद कथा है। गुस्सेसे भरा हुआ एक फौजी अफसर गर्म होकर कहता है—"इस पाशविक राष्ट्र-संघको लेकर विल्सन (राष्ट्र-संघके विधाता, संयुक्तराज्य अमेरिका-के भूतपूर्व राष्ट्रपति) क्या रोकना व साधना चाहते हैं? इसे लात मार दो। मैं मनुष्य-मात्रके भ्रातृत्वकी बड़बड़को नहीं सुनना चाहता।" भ्रातृत्वसे मतलब है बंधुत्वका और इस भावको कुचलकर पश्चिमीय सभ्यता अपने पतनकी ओर अग्रसर हो रही है। इतिहासके प्रसिद्ध मर्मज्ञ हर स्पेंगलर महाशय कहते हैं—"पश्चिमका नाश हो रहा है। पश्चिमीय सभ्यताके पतनके साथ ही साथ ईसाई धर्मका अंत हो जावेगा।" साम्यवादी शासन पश्चिमको नहीं बचा सकता। धार्मिक शास्त्रार्थ ईसाई-धर्मको नहीं बचा सकेगा। हिंसाका मत जो कि पश्चिमी राजनीतिकी प्रतिध्वनि मात्र है, भारतका उद्धार नहीं कर सकेगा। सारे देश और सारे धर्म एक शान्तिकर सन्देश—बन्धुत्वका सन्देश—आत्माका सन्देश—के लिये तरस रहे है।

भगवान् मुरलीधरने यही सन्देश पुरातनकालमें सुनाया था। यही आज फिर सभ्यताको बचानेमें समर्थ हो सकता है। मेरा दृढ विश्वास है कि श्रीकृष्णका उपदेश केवल भारतके लिये नहीं है, वरन् वह समस्त संसारके लिये है। उन्हींके चरण-कमलोंमें शताब्दियोंका सम्मिलन होता है। भगवान् मुरलीधर प्रेमके प्रभु हैं। आज तक संसारने इससे अधिक उज्ज्वल ज्ञानका प्रकाश नहीं देखा कि "प्रेम ही जीवन है।"

—टी० एल० वास्वानी।

---

* रूसकी बोलशेविक क्रान्तिका एक प्रमुख नेता।

† स्थापित १९१९

पुरातन मुरली

आध्यात्मिक समष्टीकरण

म समस्त धर्मोंके बन्धुत्वमे विश्वास रखता हूँ। संसारके सारे धर्म और मत मानव-उद्यानमे पुष्पोकी भाँति है।

सूरजमुखीके सभी फूल सूर्यकी ओर मुख किये रहते है। यही हाल सब धर्मोंका है। वे सब उनकी ओर दृष्टि लगाये हुए है जिनसे कि स्वयं सूर्य प्रकाशमान् है—परमात्मा सबका ध्येय है।

आदिसे ही हिन्दूधर्म इसी भावसे प्रेरित रहा है कि "एक ही परमात्माका सबमे, सब कही, वास है।"

एक अर्थमे हम श्रीकृष्णको हिन्दूधर्मका प्रवर्तक कह सकते है। उन्होने अद्भुत समष्टीकरण सिखलाया। मै श्रीभगवद्गीताको जगतके साहित्यमे अद्वितीय काव्य मानता हूँ। जो संयोगात्मक बुद्धि हमे गीतासे मिलती है, उसकी शेक्सपियरसे * आशा करना वृथा है।

जो हिन्दू-धर्मके अतरतम प्रदेशमे पहुँचना चाहते है उन्हे गीतामे सिखलाये गये जीवनके गम्भीर समन्वयको समझना चाहिये। समालोचकोकी दृष्टिमे हिन्दू-धर्म केवल अनेक मतोका विशाल वन है; किन्तु वे यह भूल जाते है कि इस वनमे भी क्रम और योजना है, क्योकि हिन्दू-धर्म एक मतसे शासित नही है। समालोचक जिसकी अव्यवस्थित अथवा सर्वग्राही कहकर बुराई करते है, वह वास्तवमे ऐसा गंभीर समष्टीकरण है जिसमे कि अनन्त अक्षय आत्माका सर्वव्यापी रूप देख

---

* ंग्लैंडका सर्वश्रेष्ठ कवि (१५६४–१६१६)।

पड़ता है। जिसे पश्चिमकी मति अनेकेश्वरपूजक या सब धर्मोंका सार संचय करनेवाला धर्म जानती है, हिन्दू-धर्म उससे भिन्न है। हिन्दू-धर्म आध्यात्मिक समष्टीकरण—एकीकरण—है। भगवान् कृष्णने अवतार लिया था सन्धि और निर्माणके लिये—विनाश करनेके लिये नही। उन्होंने हमे एक स्थायी समन्वयका उपदेश दिया। हिन्दू-धर्ममे अनेक विचार-धाराओका संगम हुआ है। उसपर यूनानी, फारसी, मुस्लिम और ईसाई प्रभाव भी पड़ा है। आज उस प्राचीन धर्मपर विज्ञानका प्रभाव पड़ रहा है। हम विस्तृत ससारमे रह रहे है। हिन्दू-धर्ममे अनेक परिवर्तन हुए किन्तु उस पर भी समस्त धर्म सनातन है, उसकी गति अविराम है। इस अनुपम नित्यताका कारण श्रीकृष्णद्वारा सिखलाया हुआ एकीकरण ही है। यथार्थमे गीता विशेष कर समष्टीकरणका ग्रंथ है। जैसे मै श्रीकृष्णको हिन्दू-धर्मके साथ सम्बद्ध करता हूँ, उसी भाँति उनके सन्देशके साथ मुरलीका भी सम्बन्ध मानता हूँ। मेरी समझमें वह उस प्रेम-भावकी प्रतिमा है, जो कि जीवनका अत्यन्त गंभीर समन्वय है।

प्रत्येक धर्म अपनी प्रतिभाको प्रतिरूपद्वारा प्रगट करता है। ईसाई धर्मका निशान क्रूस है और यह निशान कुछ बदलकर त्रिशूलधारी शिव, वज्रदेवी अड्ड और अरबोकी देवी लाटमे पाया जाता है। क्रूससे त्यागके महान् नियमका, आविर्भावके महान् तत्त्वका, बोध होता है।

*जरथोस्तके धर्मका (पारसी धर्मका) चिह्न अग्नि है। यही परिवर्तित रूपमे अरबी देवी अहोदके अग्नि-त्रिशूलमे पाया जाता है। इस चिह्नसे

* पारसी धर्मके प्रवर्तक। आपने ईसासे ५५० वर्षसे बहुत पहले जन्म लिया था।

पवित्रताका बोध होता है। जरथोस्तकी अग्नि आत्माकी वह ज्वाला है, जो हमारे पापोंको भस्मीभूत कर हमे पवित्र करती है।

मुरली उस समष्टीकरणकी प्रतिमा है जिसमे कि स्मृति और नियम, दर्शन और शास्त्र, सिद्ध और साधु, सबका समावेश है। महात्माओंने बहुधा दृष्टान्त, चित्र, सूत्र, गीत आदि द्वारा उपदेश दिया है। कदाचित् गीतका स्थान मौनके बाद, दूसरा है। प्रकृतिका स्वर मनुष्यकी वाणीसे अधिक पुरातन है। प्रकृति पुष्प और तारागणोद्वारा उपदेश देती है। भगवान् कृष्णने संगीतद्वारा शिक्षा दी। हम संगीतसे कितना अधिक सीखते है! गानके सुनते ही किस प्रकार हमारे नेत्रोसे जलधारा बहने लगती है और हमारे हृदय खुल जाते है! श्रीकृष्ण अपने साथ मुरलीका अद्भुत अनुपम संगीत लाये। स्वरोके सयोग विना संगीत असंभव है। श्रीकृष्णने मुरलीकी तानद्वारा उन्नत जीवनके उदार समन्वयको दर्शाया।

२—मुरलीकी पुकार

भगवान्‌ने मुरली बजाई। वह तान भावनाके अद्भुत प्रवाहका केन्द्र थी। उनकी लीला प्रेमलीला थी। क्या प्रकृतिपर प्रेमका प्रभाव नहीं पड़ता? श्रीकृष्णके गानमे आध्यात्मिक आकर्षण था। हमने पढ़ा है कि उससे वृक्ष तक प्रेमसे काँपने लगते थे, पुष्प नवीन सौन्दर्यसे प्रफुल्लित होते थे, वायु तथा पक्षिगणोका कलरव आनन्दसे भर जाता था।

प्रभुकी तानपर सबने ध्यान नहीं दिया, धन और क्षमताका अभिमान करनेवाले उससे आकर्षित नही हुए। उस संगीतसे मुग्ध हुए थे दीन, गरीब, किसान और गोपियाँ। जिनका हृदय चिन्ता और दुःखसे व्याकुल था, जिनका स्वभाव सरल था और जिनका ज्ञान यथार्थ था—

उन सबने मुरलीके मन्त्रको सुना। वह संगीत सरल था—सरल ही वास्तवमें उत्कृष्ट है। कितनी ही सुन्दरियोंके पवित्र और निर्मल हृदयोंमें मुरलीकी मनोहर तानने आत्मज्ञानकी आकांक्षाको जागरित कर दिया। प्राचीन कथाओंमें उन गोपियोका वर्णन है जो प्यासे नेत्रोंसे गलियो और वनकुञ्जोमें मुरलीधरकी बाट जोहतीं थीं। वह स्मृति शताब्दियोंसे शब्दायमान और कर्णगोचर हो रही है और आज भी ग्रामोमें उन्हीं श्याम-सुन्दरका गुणगान होता है जिनकी चरणरजने पाँच हजार वर्ष पूर्व आर्यावर्त्तको पावन किया था। ईश्वरीय प्रेम और आनन्द प्रकृतिमे मिलकर प्रतिदिन सुन्दर रूपमे—दल, कली और पुष्प आदिके रूपमे—हमें दिखाई देते है। क्या श्रीकृष्णकी मुरलीमे परब्रह्म परमात्माका चरम प्रेम और परमानन्द नहीं था? उसकी स्मृति भारतवर्षके यौवन-कालकी याद दिलाती है। उस समय भारत तरुण और शक्ति-सम्पन्न था, किन्तु हाय! वर्तमान भारतमे अनुकरणकी मति फैली हुई है और इसी कारण उसका पतन हो रहा है। जिन्होने भगवान् कृष्णकी आराधना की, उन्होंने मुरलीमें यौवनका स्रोत पाया। उसीने हृदयसे व्याधि दूर करनेके लिये अमृत प्रदान किया।

मुरलीके सन्देशसे भारतकी कविता, कला तथा अध्यात्मज्ञानका विकास हुआ है। कैसे मनोहर शब्दोमे मीराबाई, सूरदास, विद्यापति और चंडीदासने भगवान् कृष्णका गुणगान किया है! मीरावाई राजपुत्री थी; किन्तु सब ऐश्वर्यको छोड़कर कृष्णकी सेविका वनती है, सारी बाधाओको प्रभुका प्रसाद मानकर हर्षसे सहन करती है, अपने आराध्यदेवके प्रेमके लिये सब दुःख भोगती है, सबको धन्य मानती है। आँखें प्रेमाश्रुओसे भरी है और बार बार उसके मुखसे यही गीत निकलता है—

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।

और सूरदास ! श्रीकृष्णकी ज्वलन्त प्रभाने उन्हें अन्धा कर दिया। सूरदास, चर्म-चक्षु-हीन, पार्थिव दृष्टि-विहीन सूरदास, आध्यात्मिक सर्व-दर्शी थे। चर्म-चक्षुको सदाके लिये बंदकर सूरदास मुरलीधरके प्रेममें मग्न हो गये। वे गीत अत्यंत मधुर और हृदयग्राही है जिनमे वे आत्माका अपने दिव्य-प्रभु भगवान् कृष्णसे गूढ़ वियोगका वर्णन करते है—

निसि दिन बरसतु नैन हमारे।
सदा रहत बरसा रितु हमकँह, जबते स्याम सिधारे।
नैन अंजन न रहत निसि बासर, कर कपोल भए कारे।
कंचुकि-पट सूखत नहिं कबहूं, उर बिच बहत पनारे।
ऐसे सलिल सबै भइ काया, पल न जात रिस टारे।
'सूरदास' प्रभु गोकुल बूड़त, काहे न लेत उबारे॥

प्रभुकी भक्तिमे विद्यापतिके गीत सब युगोके लिये हैं। वे कहते है—"मेरे नेत्रोने प्रभुको अनेक बार देखा है—फिर भी वे अधिक, अधि-काधिक दर्शनोके लिये तरसते है।" एक कविका गीत करोड़ नयनोसे भगवान् कृष्णके दर्शनकी उत्कण्ठाका वर्णन करता है।

आधुनिकता कहेगी (और यह तर्क ठीक भी है) कि केवल राग अथवा भावनाको ही कृष्ण-भक्तोके अपरोक्ष ज्ञानके अनुभवके मूल्यको समझनेकी सच्ची कसोटी नहीं माननी चाहिये। मै कहता हूँ कि उसकी आप व्यावहारिक रूपसे परीक्षा कर ले। उसकी सफलतासे आप यथेष्ट प्रमाण पा सकेगे। भक्तोके अनुभवकी परीक्षा उसके परि-णामसे भी कर सकते है। तनिक बगालको लीजिये। कृष्ण-भक्तिने प्रसिद्ध विद्वान् और तर्कशास्त्री चैतन्यके जीवनको बदल दिया। कृष्ण-भक्तिके कारण बगालमे एक नवीन सस्कृतिका जन्म हुआ। सहस्रो

हिन्दुओंके धार्मिक जीवनमे कृष्ण-भक्तिने चेतनता उत्पन्न कर दी। अनेक मुसलमान भी उसके वशीभूत हो गये। भगवान्‌के एक मुसलमान भक्तने यह गीत गाया था—"जब मै बंशीकी तान सुनता हूँ तब मेर आँसू गिरने लगते है—मै अभागा हूँ यदि कृष्णके दर्शन न कर सकूँ।" कृष्ण और राधाके सम्बन्धके अनेक उत्तम और मनोहर गीत एक मुसलमान भक्तने बनाये है। यह भक्त अपनेको 'चैतन्यदास' कहता था। मुरलीके सन्देशके प्रचारमे इस चैतन्यने असीम उत्साह दिखलाया। दबीरखान और मलिकने हिन्दू-धर्मको छोड़कर इस्लामको ग्रहण किया था। संस्कृत और फारसीका उन्हे यथेष्ट ज्ञान था। सय्यद फकरुद्दीनसे उन्होंने अरबी भाषा भी सीखी थी। श्रीचैतन्यने उन्हे फिर हिन्दू-समाजमे मिला लिया। वैष्णव धर्ममे दीक्षित कराकर 'सनातन' और 'रूपा' उनके हिन्दू-नाम रक्खे गये। इस सनातनने श्रीकृष्ण-भक्तोंमें उच्च स्थान प्राप्त किया। शेरखाँ नामक व्यक्तिको श्रीचैतन्यके अनुयायियोंने हिन्दू धर्मकी दीक्षा दी थी। अनेक बौद्ध, जिनको कि हिन्दू समाज अछूत कहकर घृणित मानता था, कृष्ण-भक्तिके कारण हिन्दुओमें मिला लिये गये। हमने पढा है कि एक अवसरपर २५०० बौद्धोने एक साथ ही वैष्णव मत ग्रहण किया। रघुनाथदास राजपुत्र थे, किन्तु उन्होने मुरलीकी पुकार सुनी और गौतम बुद्धकी भाँति उन्होंने भी ऐश्वर्यको तिलाञ्जलि दे दी। भगवान्‌के संदेशका प्रचार कर वे सुखी हुए। नरोत्तम भी एक राजपुत्र थे। पुस्तकोमे लिखित कथा इस प्रकार है—नरोत्तम नदीके तीर पर खड़े थे। उन्हें ऐसा समझ पड़ा कि बंशीकी ध्वनिके साथ उन्हे कोई पुकार रहा है कि "मेर पास आओ!" नरोत्तमने कहा "मै आया, यह महल मेर लिये नही है।" अपने पिताके विशाल महलसे श्रीकृष्णका एक साधारण मन्दिर उन्हे अधिक सुखमय

लगा। उन्होंने कहा "मै बहुमूल्य भोजन नही चाहता—मै दीन गरीबोंके साथ ही रूखा-सूखा भोजन ग्रहण करूँगा।" ऐश्वर्य और विलासको त्याग कर नरोत्तमने भगवान्‌की सेवामे ही सुख और आनन्द पाया। श्रीकृष्णके संदेशने चोर और डाकुओ तकके जीवनको बदल दिया। एकके संबधमे लिखा है कि जब उसे कारागारमे भेजा गया, तब उसने कहा "भगवान्‌के चरणकमलोकी उपासनामे मग्न मेरे लिये राजमहल और कारागार बराबर है।" मुरलीके संदेशने बंगालको नूतनतासे विकसित कर दिया।

३—मार्ग और योजना

म कह चुका हूँ कि कृष्ण-संदेश समन्वयका निर्देश ही है। उन्होने गीतामें उसे राजयोग कहा है। मेरी बुद्धिके अनुसार इस शब्दके दो अर्थ हो सकते है। पहला—'राज'-योग—यह सब योगोमे प्रधान है, क्योकि इसमे सब योगोका संयोग है। दूसरा—राज-योग—क्योकि यह राजमार्गको बतलाता है। साधनाका पथ महत् है, क्योंकि तुममे भी महत्ता है। "हे इस मार्गपर जानेवाले पथिको! तुम निर्बल और निस्सहाय नहीं हो! तुम सब राजपुत्र हो! तुम सनातनकी सन्तान हो!" अपने समयके—यहूदियोंसे ईसाने कहा "तुम ईश्वर हो" किन्तु वे इसे न समझ सके। उन्होंने कहा "पत्थरोसे इसे मारो।" उन्होने ईसाको शूली दे दी। ईसाने प्राचीन सत्यको केवल फिरसे दुहराया था। वे सिद्ध थे। श्रीकृष्ण भी सिद्ध थे। सिद्ध ससारमे बिरले ही होते हैं। किन्तु ये मनुष्यमात्रके सम्मुख उद्दीपन आदर्श उपस्थित करते है। इसका कारण यह है कि इतिहासका हेतु पहिचाननेकी क्षमता उनमे होती है, वे विकासका अर्थ समझते है, वे युगोके कार्यक्रमकी गतिको

देख लेते है । यह क्रम—यह योजना, दिव्य है । कोई मनुष्यको हँसनेवाला जन्तु कहते है, कोई उसे अग्नि जलानेवाला पशु बतलाते है, कोई उसे भाषा-भाषी प्राणी कहते है, कोई उसे मिथ्यावादी जीव मानते है जो कि विश्वासघात करने अथवा धोखा देनेमे सिद्धहस्त है । प्रोफेसर रिचेटने एक पुस्तकमे लिखा है—"मनुष्य मूढ है ।" लेकिन सर्वदर्शी सिद्ध महात्मा मनुष्यमें पशुताके परे दिव्यताकी ओर ध्यान आकर्षित करते है, उसकी विकृति, भ्रान्ति, मोह और अज्ञानके परे मनुष्यमे जो अमर तत्त्व है, जो ईश्वरीय सार है, उसीका निदर्शन कराते है । "तुम आत्मासे संबद्ध हो ! तुममे ईश्वरीय जीवन प्रवाहित है ! तुम निर्बल नही हो ! तुम पौरुषशून्य नहीं हो ! तुम्हारे भीतर एक भीषण शक्ति छिपी हुई है ।" जिस दिन—हे भारतके नवयुवको ! जिस समय—तुम्हें यह माल्रूम हो जावेगा उसी क्षण तुम संसारके राष्ट्रोंकी मण्डलीमे अपना मस्तक उन्नत कर खड़े हो जाओगे, भारत-माताके बंधन टूट जावेगे और तुम्हारा देश स्वतंत्र राष्ट्र बन जावेगा ।

श्रीकृष्णका राजयोग, उनके संगीतकी तरह, एक संयोग है । उसके तीन मुख्य भाग है ।—१ धर्म-योग, २ भक्ति-योग और ३ बुद्धि-योग । इनमेसे प्रत्येकके तीन तीन विभाग है ।

धर्म-योगमे दान, ज्ञान और तपका सम्मिश्रण है । ये प्रत्येक मनुष्यके कर्तव्य है । आध्यात्मिकता धर्म अथवा जीवनके कर्त्तव्यो और आवश्यकताओसे दूर भागना नहीं है । आध्यात्मिकता एक विजय है । धर्म पलायन नहीं—जीवन है । भारतका अधःपतन उसी दिनसे प्रारंभ हुआ जिस दिन उसने धर्मको जीवनसे अलग कर दिया । भगवान् कृष्णका आदेश किंकर्त्तव्यविमूढता (नैष्कर्मवाद) या अकर्मण्यताकी शिक्षा

नहीं है। आध्यात्मिकता एक शक्ति है। धर्म आत्माकी चेतनता है। जिन कार्योंसे आत्माका जीवन, उसकी स्फूर्ति या शक्तियाँ स्फुटित हो, वे सब कार्य पवित्र है। धर्म आसक्ति नही है—ईश्वरकी भक्तिसे प्रेरित कर्म-मय सेवा ही धर्म है।

तुम्हारे नीचे ईश्वर है, ऊपर ईश्वर है और भीतर ईश्वर है। इसी कारण तुम्हारे तीन कर्त्तव्य है—दान, यज्ञ और तप। दानका अर्थ परोपकारमे केवल धन देना ही नही है, प्रेम और सहानुभूति दर्शाना भी दान है। केवल भिक्षा देना ही दान नही है, संसारपरहितेच्छा ही दान नही है; किन्तु दीनके प्रति आदरसे प्रेरित सेवा ही दान है। दान दीनकी पूजा है। अभिमानसे, आडंबरके लिये अथवा आत्म-श्लाघाके हेतु किया गया दान सच्चा दान नही है। दीनोपर स्वामिभाव न दिखलाओ—उनकी सेवा करो, क्योकि वे श्रीकृष्णके अंग है। दीनको अपना ही भाग प्रदान करो। प्रार्थनाका एक अश्रु विना भक्तिके दान दिये गये दस हजार रुपयोसे कही अधिक बहुमूल्य है। हाय! इन्ही दीन गरीबोके दुःख और शोकपर वर्तमान समाजकी व्यवस्था स्थित है। आधुनिक सभ्यता धनवान् पुरुषोके भोग-विलासके लिये इन्हीं दीनोके जीवनकी आहुति देती है। मै दीनोकी श्रेणीमे उनको भी स्थान देता हूँ जो कि पतित अथवा पापी है। अपराधीको भी मनुष्य समझो—उसमे ईश्वरकी विभूति दलित है। कैदखानोका सुधार करना होगा। और जो पतित या दलित है, क्या ईसाने उन्हे आशीर्वाद नही दिया? श्रीकृष्णके सबंधमे लिखा है कि एक समय कोई वेश्या उनके चरणोपर अपना मस्तक रक्खे रो रही थी। इस दृश्यको देखकर उन राजकुमारोको—जो कि वहाँ उपस्थित थे—बड़ा क्रोध हुआ। उन्होने भगवान्से पूछा—"आप इस दुराचारिणी स्त्रीको अपना अपमान क्यो करने दे रहे है?" प्रेममूर्ति भगवान्

मुस्कराये और बोले–" उसे मत रोको, उसका ज्ञान तुमसे अधिक है; क्योंकि उसमे श्रद्धा और प्रेम है। " पतित भी मनुष्य है। दीन दुखी परमात्माके अंग है। यही हाल सब जंतुओ और प्राणियोका है। उनमें भी ईश्वरीय चेतनता, मनुष्यसे कम मात्रामें, विद्यमान है। इस समय जब कि भारतीय आदर्श धीरे धीरे पश्चिमके अनेक पुरुषो और महिलाओको अपने वशमे कर रहे है, पश्चिमीय विचार भी भारतीय नवयुवकोके हृदयों-पर अधिकार जमा रहे है। मै बहुतसे युवकोको जानता हूँ जो यह कहते है कि आरोग्यता और बलके लिये मांसाहार आवश्यक है। क्या वास्तवमे हम वधस्थानसे आरोग्यता और सुख खरीद सकते है? मेरा सबसे यह निवेदन है कि मांसभक्षण त्याग दो और पशु पक्षियोसे भी प्रेम करो। इस चेतन-जगत्मे वे भी हमारे भाई है। उन्हे भी विका-सकी सीढ़ीपर चढना होगा। वे भी प्रेममय भगवान्के रूप है।

यज्ञका अर्थ है ईश्वरकी पूज। शोक! वर्तमान भारत अपने पर-मात्माको भूल गया है और इसीसे हम निर्बल बने भटक रहे है। यज्ञ हमारा दैनिक कर्त्तव्य होना चाहिये। ईश्वरकी प्रार्थनामे बड़ी शक्ति है।

तपका अर्थ है आत्म-सम्मान और आत्म-निग्रह। तप वह त्याग है जिसे नवयुवकोको करना उचित है। फिर भी आज बहुतसे भोग-विला-समे तल्लीन है। आजकल अधिकांश भारतीय विद्यार्थियोका उद्देश्य भोग-विलास है—ब्रह्मचर्य नहीं। यही त्रेधाभक्ति—चेतन जगत्के ईश्व-रीय स्वरूपके प्रति प्रेम, आदि पुरुष परमात्माके प्रति भक्ति, आत्मा तथा उसकी शक्तियोका ज्ञान और विकास–यही त्रिमूर्ति कर्त्तव्य—धर्मयोगका, कर्त्तव्य और निग्रहके महत् योगका, सार है। देश और ईश्वरकी सेवा करनेके लिये युवकोंको इसी योगका साधन करना होगा।

अन्य दो योगो (भक्ति-योग, बुद्धि-योग) के संबंधमें स्थानाभावके कारण अधिक नही कहा जायगा। भक्ति-योगमे भी तीन तत्त्व विद्यमान है—१ अनुराग, २ श्रद्धा और ३ धृति।

अनुराग—अभिलाषा है, आत्माकी उत्कण्ठा है। रिचार्ड वेगनर नामके एक संगीतप्रिय दार्शनिकने इस भावको अपनी 'फ्लाइंग डचमेन' नामकी पुस्तकमे भलीभाँति दर्शाया है। राधा, मीराबाई प्रभृति अनेक भगवद्भक्तोने हर युगमे इस भावनाके सौन्दर्यका अनुभव किया है। अनुरागके विना भगवान्‌के दर्शन दुर्लभ है।

श्रद्धा—विश्वास है। धृतिका अर्थ है दृढता। ये दोनो भक्तिके लिये आवश्यक है। अनुराग एक मनोहर भावना है। भक्ति निरी भावना नहीं है। उत्कण्ठामे हम अश्रुमोचन करते है। आँसू एक निधि है। लेकिन मै अनेक मनुष्योको जानता हूँ जिनके नेत्रोंसे प्रार्थना करते समय जल गिरता था, पर उन्ही लोगोने दफ्तरमे पहुँचकर अपने भाइ-योका रक्त चूसा। ससारमे कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं जो कि भजन करते समय बड़ी भक्ति और श्रद्धा दिखलाते हैं, लेकिन वे ही घूस लेने या अन्य कुकर्म करनेमे नही हिचकते। ऐसे मनुष्योमे भावना होती अवश्य है; किन्तु वह क्षणस्थायी होती है। उनमें प्रभुके प्रति स्थायी तथा सचेतन श्रद्धाका अभाव रहता है। उनमे धृति नहीं होती। तुम्हारी भक्ति दृढ होनी चाहिये। उसे कार्यरूपमे परिणत करो। परमात्माको प्राप्त करनेकी आकांक्षा पवित्र जीवन और सेवाकर्मद्वारा प्रदर्शित होनी चाहिये। सच्ची भक्ति एक शक्ति है। सच्चा भक्त निरा भावुक नहीं होता, वह अपनी शक्तिको ईश्वर—सेवामे लगाता है। यही आकांक्षा श्रद्धा और दृढतासे मिलकर, प्रेमकी ज्योतिको उत्पन्न करती है। इसी सच्ची भक्तिके बारेमे दार्शनिक प्लोटिनसने ये महत्त्वपूर्ण शब्द लिखे है:—

"हम बोलते और लिखते है केवल इसीलिये कि हम उन्हे मार्ग दिखला सकें जिन्हे कि दर्शनकी उत्कण्ठा है। हमारे वचन उन्हे ध्येयकी ओर अग्रसर कराते है। उपदेशद्वारा पथ और योजनाका ज्ञान हो सकता है। दर्शन प्राप्त करना प्रत्येक आत्माका काम है। कितने ही ऐसे है जो विविध प्रयत्नोके बाद भी परमात्माको न पा सके। कारण यही था कि उनकी आत्मा उस अनन्त वैभवका अनुभव न कर सकी, उसमे उत्साह नहीं था, उसमे ज्ञानोपार्जनके हेतु प्रेमकी ज्योति नही थी, उसका हृदय प्रेमीके गाढानुरागसे रहित था। उन्होने परम प्रकाशकी झलक पाई, ज्यो ज्यो वे उसके पास पहुँचे त्यो त्यो उनकी आत्मा उज्ज्वल होती गई; किन्तु उनके कंधोपर कठिन भार था जिसके कारण वे उस पावन प्रकाशके मन्दिरमे प्रवेश न कर सके। अपनी आत्माकी पवित्र एकाग्रताके सहारे वे उन्नत पथपर नही चढ़े, सासारिकता अथवा स्वार्थके बोझने उन्हे रोक लिया, उनके अंतरतम प्रदेशमे अबतक अद्वैतभावका उदय नही हुआ था!"

बुद्धि-योगके भी तीन तत्त्व है—१ विवेक, २ विज्ञान और ३ विश्वदर्शन।

जब यह बोध हो जावे कि क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ एक नहीं है, तब विवेकका उदय होता है। आत्मा और बाह्य परिस्थिति एक नही है। शरीर जीवात्मासे भिन्न है। तुम्हे परिस्थितिकी आवश्यकता अवश्य है, लेकिन तुम उससे अधिक महत् हो। तुम्हारा शरीर भी उपयोगी है, लेकिन इस वास्ते कि वह तुम्हारा वाहन है। फिर भी तुम उससे अधिक महत् हो। तुम ऐसे दीन और बलहीन जीव नही हो, जैसा कि तुमने अपनेको मान रक्खा है। तुम अनंत-शक्तिसंभूत हो। तुम्हारे भीतर महान् क्षमता निहित है। तुम्हे अपने पूर्वजोका प्रचण्ड दुर्जय तेज प्राप्त है।

तुम सब राजपुत्र हो। लेकिन तुम अपने सच्चे स्वरूपको भूल गये हो, इसी लिये छोटी छोटी वस्तुओ और लघु आकांक्षाओंके लिये इधर उधर भटकते फिर रहे हो। विवेकका उदय किस प्रकार हो, अथवा किस प्रकार तुम अपने सच्चे स्वरूपको पाओ, इसकी व्याख्या मै यहाँ नही करूँगा। इसके लिये विविध साधनाओ तथा अनेक निग्रहोका वर्णन किया जा सकता है। उनमेसे एक है—मौनसाधन। प्रत्येक नगरमे मौनव्रतके लिये केन्द्र होना चाहिये। ज्यो ही तुम मौन धारण करोगे, त्यो ही तुम्हारी विवेचना शक्ति विकसित होगी और तुम जानोगे कि आत्मा बाह्य परिस्थितिसे भिन्न है। मित्रो! तुमने चतुरता और कलह-प्रियतामे बहुत समय व्यतीत किया है। अब तुम खिन्न, क्लान्त, क्षीण और दुःखित हो गये हो। मेरा तुमसे निवेदन है कि तुम मौनव्रतकी क्रिया-की कुछ समय तक परीक्षा करो। कुछ मास तक मौनका अभ्यास करो, तब तुम्हे पता लगेगा कि तुममे उस शक्तिका उदय हो गया है, जो सारे ससारके वैभवसे कही अधिक मूल्यवान् है। वह शक्ति एक जागृति है, व्याधिहारिणी ओषधि है।

विज्ञान एक सिद्धि है। जब तुम अपनेको बाह्य जगत्से पृथक् कर, मौनके द्वारसे अतरतम प्रदेशमे प्रवेश करते हो, तब तुम्हे ज्ञान होने लगता है कि हम क्या है। स्मृतिके कपाट खुल जाते है और उस समय तुम्हे अपने राजकीय जन्मका बोध होता है। तब अन्तर्ज्योतिमे पहुँचते हो। इस महान् सत्यकी झलक बर्गसन, क्रोस और यूकन आदि आजकलके पश्चिमी दार्शनिकोने देखी है और उन्होने दर्शन-शास्त्रकी मीमासामे यह बतलाया है कि चेतनताका विकास है—सहजबो-धसे प्रज्ञा और प्रज्ञासे अन्तर्ज्ञान। आजकल बहुत कम मनुष्य ऐसे है जो इस चेतन अवस्थाको प्राप्त करनेका विचार तक करते हों। वर्त्तमान

मतिको जीवनकी निराकार महिमाओमे विश्वास करनेमें काठिनता प्रतीत होती है। किन्तु भारत तो इसका अन्वेषण शताब्दियोंसे कर रहा है। ज्ञानकी प्राप्ति ही सदैव उसका उद्देश्य रहा है। इसी परम ज्ञानकी खोजमें राजपुत्रोंने महलोंको छोड़ दिया, राजाओंने इसीकी चाहमे सिंहासनोंको त्याग दिया। शाक्यजातिके युवराज गौतम बुद्धने अपने राजकीय ऐश्वर्येको तिलाञ्जलि देकर सिद्धिका मार्ग ग्रहण किया। यह पथ निरे पाण्डित्यका मार्ग नही है। पुस्तकोकी विद्यासे विज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अनेकानेक पुस्तकोंका अध्ययन करनेपर भी सभव है तुम आत्माके आन्तरिक विश्वकोषके बारेमे कुछ भी न जान सको। श्रीरामकृष्ण परमहसने पुस्तकोका अध्ययन नही किया; फिर भी उन्हे विज्ञान प्राप्त था। उनके वचनोको आप पढे। उनमे कितना गंभीर तत्त्वज्ञान भरा पड़ा है। विज्ञानको हठयोग अथवा प्रेतविद्या मत मान बैठो। प्रेतविद्या तथा आध्यात्मिकता एक नही है। तुम्हे प्रेतविद्याकी शक्ति प्राप्त हो सकती है; किन्तु तुम उसका उपयोग स्वार्थी तथा पातकी कर्मोंमें भी कर सकते हो। अपने सच्चे स्वरूपका, अपनी अन्तरात्माका, ब्रह्मका, ज्ञान ही विज्ञान है। किन्तु आजकल तुमने अपने बाह्य रूपको ही सच्चा स्वरूप मान लिया है। वास्तवमे तुम अपनेको जितना समझते हो उससे कहीं अधिक महत् हो।

विश्वदर्शन। जब विज्ञानसे अन्तर्दृष्टि खुल जाती है, तब अनेकमे एकके आभासका उदय होता है। यह आभास अद्भुत है। इसमे सौन्दर्य है, आनन्द भी है। जो इसकी तनिक भी झलक पा लेता है वह समस्त आवरणके भीतर जो चेतनमूर्ति है उसीकी उपासना करता है। वह उस गंभीर ज्ञानको—अन्तर्ज्योतिको—प्राप्त होता है जो तर्कसे परे है। तब वह देखता है कि मृत्यु माया है, क्योकि मृत्युके अनंतर पुनर्जन्म है और समस्त

बहुत कालसे हम तुम्हे छोड़ बैठे है ! भारतकी करुण आत्मा तुम्हे पुकार रही है ! आओ ! अब उद्धार करो ! पीडित और त्रस्त मानव-जाति तुम्हे बुला रही है ! आओ ! भगवन् ! आओ ! और इस प्राचीन जातिका संदेश और सगीत समस्त संसारको सुनाओ ! हे नाथ ! आओ ! और आकर इस जगत्मे प्रेम और प्रकाशका संचार कर दो।" तब मेरे हृदयमे भगवान्की यह वाणी सुनाई पड़ती है—"देखो ! मै प्रेमकी दृष्टिसे देखता हुआ, आनेको उत्कंठित खड़ा हूँ, किन्तु क्या तुम मेरे स्वागतके लिये अपने हृदय-मन्दिरके कपाट खोलोगे ? ओठोपर मुरली रक्खे हुए मै एकताकी महत् तान सुनानेको प्रस्तुत हूँ, किन्तु क्या तुम कलह बन्द करोगे ? मै आकर समस्त जातियो, देशो और धर्मोमें मैत्री करानेके लिये उत्सुक हूँ, किन्तु क्या तुम उस पुकारको सुननेके लिये तत्पर हो ?" मित्रो ! मै नम्रभावसे तुमसे निवेदन करता हूँ कि निर्वासित प्रभुका फिरसे स्वागत करो ! अपने नगरोमे और अपनी सभ्यतामे प्रभुको बुलाकर उपस्थित करो ! उन्हे अपनी राजनीति, संस्कृति तथा दिनचर्यामे पुनः स्थान दो ! प्रेममूर्ति परमात्मा सब राष्ट्रोको उस स्वतंत्रताकी ओर अग्रसर करेंगे, जो सारी व्याधियोको दूर करेगी।"

आया था। जब मै लौट कर आया तब भारतके प्रति मेरा प्रेम अत्यन्त प्रगाढ हो चुका था—भारतीय आदर्शोंके प्रति मेरी श्रद्धा बहुत गहरी और सच्ची हो चुकी थी।—पश्चिमसे लौटकर मैने भारतकी परिस्थितिका अवलोकन किया और पूछा—"हे प्रभु! तुम कहाँ हो?" मै मन्दिरोंमे गया और देखा कि वे व्यवसायके केन्द्र है, उनमेसे अनेक तो व्यभिचारके अड्डे थे। मैने पूछा—"हे प्रभु! तुम कहाँ हो?" मैने विद्यालयोमे और महाविद्यालयोमे देखा, उनमें अनुकरणात्मक प्रवृत्तिकी वृद्धि हो रही थी। उनमेसे जो सर्वश्रेष्ठ थे, वे कर्महीन तथा उत्साहविहीन बुद्धिके केन्द्रोसे बढकर नही थे। आत्माकी सस्कृति वहाँ न थी। मैने पूछा—"हे नाथ। तुम कहाँ हो?" मैने शिक्षित युवकोके मुखपर दृष्टि डाली। मैने उन्हे अनेक बातोमे व्यस्त पाया; किन्तु वे एक परमावश्यक वस्तुको—उद्धारकर्त्ता परमेश्वरको—सर्वथा भुलाए हुए थे। मैने फिर पूछा—"हे भगवन्! तुम कहाँ हो?"

आजकलके कोलाहल और आडंबरमे मै उन प्रभुको नहीं देख पाता। दलो और मतमतान्तरोकी इस भीषण कलहमें वे नही दीखते। सभ्यता अब भी आर्थिक भौतिकवादका शासन है। आज भी भारतको—भगवान-की जन्म-भूमि भारतको—साम्राज्यवाद पददलित किये हुए है। जातीय अहंकारहीकी सर्वत्र विजय देख रहा हूँ। हिन्दू-समाजको अब भी अनेक वर्णोंमे विभाजित पाता हूँ। ईसाइयोके उपासना-मन्दिरोंमे अब भी उन मतोका प्रभुत्व देखता हूँ जो कि भेदभावको उपजाते है। मै देखता हूँ कि अब भी धन और प्रभुताका गर्व दीन गरीबोको निर्दय भावसे कुचल रहा है। मै जीवोको—भगवान्के अंगोको—वधस्थानकी ओर ले जाते देखता हूँ। मेरा दुःखित अन्तःकरण रात्रिकी निस्तब्धतामे और प्रभातकी नीरवतामें बार बार पुकार उठता है—"हे कृष्ण! आओ

लोग धर्मसे चमत्कारकी लालसा करते है। भक्तिका जीवन आवेगका जीवन नही है। धर्मसे विषय-सुखकी आशा कदापि न करो। भक्त आकांक्षा करता है, भक्त कष्टोको सहता है और इसीसे उसे शक्ति मिलती है। क्या भक्ति प्रज्ञाहीन है? क्या उससे एक परमोत्कृष्ट नियमका —प्रेमके उदार सिद्धान्तका—प्रदर्शन नही होता? दार्शनिक ईश्वरकी व्याख्या और परीक्षा भले ही करता रहे; किन्तु भक्त प्रेम ही करना जानता है। वह भगवान्‌की उपासना करता है और प्रेमके भरोसे उनकी कृपादृष्टिके लिये विनती करता है। प्रभु-प्रेमकी स्मृति ही भक्तके हृदयको व्यथित करती है। वह स्मरण कर अश्रुमोचन करता है। विद्याकी भाँति भक्ति भी स्मृतिप्रधान है।

कुछ दिन पहले मैने अपनी एक कापीमे ये शब्द लिखे थे—

"वे आये, वे सर्वोत्तम थे, उनका सौन्दर्य अद्वितीय था। उन्होने आकर मेरी आत्माके झरोखेसे झाँक कर देखा। देखकर वे चले गये। तबसे मै प्रतिदिन झरोखेमे बैठकर उन तेजपुञ्जकी बाट जोहता हूँ। वे अब तक नही आये, मेरे नेत्रोमे आँसू भर आये है और मेरी आत्मा प्रतीक्षासे पीडित है। वे नही आये। मेरे मित्रो! बतलाओ, क्या वे अब लौटकर नही आवेगे? क्या वे इस व्याधि और निर्वासनसे मेरा उद्धार नही करेगे?"

उत्कण्ठाके प्रत्येक अश्रुसे भक्तिका वृक्ष सिंचित और पुष्पित होता है। भाई! विलाप करो! आँसू बहाओ! किन्तु हताश मत हो! यही वृक्ष एक दिन ऊँचा होकर आकाशकी दयाका पात्र बनेगा। परमार्थके प्रति भावनामय सहयोग ही भक्ति है। इस भावमयी प्रवृत्तिमे एक कवित्व-लक्षण भी है—उससे ऐसे अनेक तत्त्व प्रकाशित होते है जो

राधाकी खोज

" भक्तिसे ही मुझे पहिचान सकोगे। "—गीता

१-उच्चतर ऐक्यभाव

उन्होने मुझसे पूछा—" भक्ति क्या है ? "

मैने उत्तर दिया—" राधाकी खोज।"

विद्वान् अरस्तूने* ईश्वरको विज्ञ और प्रवर्तक-सर्वज्ञ तथा आदि प्रेरक-अचल तथा संचालक कहा है। अरस्तूके भगवान् प्रेममूर्ति नहीं है। ज्ञान और प्रेमकी चरम एकताका आभास अरस्तू न देख सका। वह पण्डितो और विद्वानोका चूड़ामणि यह न समझ सका कि विश्वका आदि संचालक प्रेममय ब्रह्म ही है। संसार किसकी खोजमे तल्लीन है ? अनंत भगवान् कृष्णकी। जगत्की प्रेरणा शक्तिको—विकासकी प्रवृत्तिको—राधाकी खोज कह सकते है—वह राधा जिसने कि मुरलीकी पुकार सुनी है। जब तक वह अपने प्रभुको न पा लेवे, तब तक उसे विश्राम नहीं है।

मुरलीकी पुकार तथा उससे प्रेरित आत्माकी परमात्मासे मिलनेकी इच्छा—यही भक्तिकी जननी है। धार्मिक जीवनमे भावनाके लिये स्थान है; परंतु निरी भावना विवेकशून्य है। जब भावना बुद्धिको लाँघ जाती है, तब विपरीतता झलकने लगती है। धार्मिक जगत्में अत्यन्त करुण अवस्था उन लोगोकी है जिन्होने निरी भावुकताको धर्म मान लिया है। श्रीकृष्णने कहा है—" भक्तिसे+ मुझे भली भाँति जान सकते हो।" कई

---

* जन्म ईसासे ३८५ वर्ष पूर्व, मृत्यु ईसासे, ३२२ वर्ष पूर्व। आप ग्रीस देशके एक सर्वप्रधान दार्शनिक थे। दिग्विजयी सिकदर आपका शिष्य था।

+ भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वत.।
ततो मा तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥
—गीता १८, ५५।

किन्तु वही अब मेरे पास नही आते,
कहो ! इस हृदयको कैसे समझाऊँ ?

× × ×

उनके नामका मधुर संगीत
श्रवणोंसे अधिक गंभीर देशमें पहुँच चुका है,
उसने मेरे हृदयको मुग्ध कर दिया है,
इसीसे मैं कृष्णके लिये पागल हूँ !

× × ×

हे नाथ ! तुमसे अधिक मैं क्या कहूँ ?
जीवनमें अथवा मरणमें,—
अथवा इस जीवनके अनन्तर जन्म जन्ममें,
तुम राधाके हृदयेश्वर बने रहो !

× × ×

वैष्णव साहित्यमे अनत भगवान् श्रीकृष्णको विश्वप्रेमका प्रतिनिधि माना है। विश्वप्रेमके अधीश्वर भगवान् कृष्णके अनुरागमे ही ज्ञान और भक्तिकी चरम सीमा है।

३—अलौकिक आलोक

एक ईसाई सन्तके संबंधमे एक मनोहर कथा प्रसिद्ध है। वह एक बालिका थी। बाल्यावस्थाहीमे उसकी मृत्यु हो गई। उसका मुख सुन्दर था। उसकी भक्ति कहीं अधिक सुन्दर थी। एक ऊँचे रोमन कर्मचारीका पुत्र उसपर मोहित था। उसने उस कन्याको अमूल्य रत्न आदिका लोभ दिया। किन्तु उस बालिकाने कहा—"हट जाओ ! मेरा प्रेम ईसाके लिये है।" उसके अंतःकरणमें महात्मा ईसाके प्रति गहरी भक्ति थी। रोमन कर्मचारीने आज्ञा दी कि इसे विवस्त्र कर दो; किन्तु उस सरल बालिकाके केश बढकर लबे हो गये और उन्होने उसके शरीरको सुन्दर आवरणकी भाँति आच्छादित कर दिया। उस कन्याके अंतःकरणमे भक्ति थी। दुःख और शोकमे भक्त अपना बीज बोता है;

बुद्धिसे सर्वथा परे है। अंतःकरणकी दृष्टि वहाँ भी पहुँचती है जहाँ कि मस्तिष्कको कुछ भी नहीं दीखता।

२—अनंत भगवान् कृष्ण

यह कहना कि ईसाई-धर्मके प्रचारके पहले भारतवर्षको भक्ति-मार्गका ज्ञान नहीं था, ऐतिहासिक दृष्टिसे सर्वथा असत्य है। उपनिषदोंको देखिये, रामायणको पढ़िये, आपको पता लगेगा कि ईसाई-धर्मकी उत्पत्तिसे शताब्दियों पहले भारतको भक्तिका ज्ञान था। भक्तिके लिये हिन्दू-धर्म ईसाई-धर्मका आभारी नहीं है और न ईसाई धर्म उसके लिये बौद्ध-धर्मका ऋणी है। भक्तिपर किसी एक धर्मका अनन्य अधिकार नहीं है। भक्तिकी उत्पत्ति आप ही आप मनुष्यके अंतरतम प्रदेशसे होती है। वे गीत कितने हृदयंगम और शिक्षाप्रद है जो वैष्णव कवियोने कृष्णकी खोजमें तल्लीन राधाके मुखसे कहलाये है। मै नीचे बंगालके दो तत्त्व-दर्शी कवियोंके—ज्ञानदास और चण्डीदासके—कुछ पदोंका अनुवाद देता हूँ। राधा कहती है:—

बार बार यह प्रश्न मेरे अंतःकरणमें उठता है
कि "हे नाथ! तुम्हें मैं क्या दे सकती हूँ?"
"कहो नाथ! कहो! तुम्हें मैं क्या अर्पण करूँ?
मुझे आत्मसमर्पण ही करना होगा!

× × ×

जो आपका है वह आपहीको मिलेगा,
और जो कुछ मेरा है वह आपहीका है,
मेरा धन आपका है, मेरा महल भी आपका है,
मेरा सर्वस्व आपहीका है—

× × ×

प्रभुके हेतु मैंने सब त्याग दिया,
उन्हीके हित घोर अपमान भी सहन किया,

हो जायँ और उनकी प्रतिभा हमारे हृदय पटलपर अंकित हो जाए—जीवका इससे अधिक गौरवान्वित अथवा महत्त्वपूर्ण कौनसा अधिकार हो सकता है ? आत्माका अपने प्रभुके प्रति अनन्य प्रेम ही भक्ति है। प्रभु प्रेममय हैं। यदि सूक्ष्म-गहन-दृष्टिसे देखा जाय तो भक्ति ही प्रभु है। भगवान् प्रेमरूप है और भक्ति भक्तद्वारा प्रस्फुटित उन्हींका प्रेम है। भक्तिके रूपमे परमात्मा अपनेको व्यक्त करते है।

भक्ति कामना नही है। सच्चा प्रेम लालसा नहीं है। आजकलके अधिकांश नाटकोमे यही गलती पाई जाती है—वे काम-वासना और प्रेमको एक समझ लेते है। वे कहते है बाइवाटर्स मिसेज टामसनसे 'प्रेम' करता था। उसी 'प्रेम'से अन्धे होकर उसने मिसेज टामसनके पतिकी हत्या कर डाली, इसलिये उसे फाँसीका दण्ड देना निर्दयता थी। ऐसे लोगोंको आदरणीय मानना अनुचित है। समाचारपत्रोंने लिखा कि "वह उस स्त्रीपर 'प्रेम' रखता था।" नही, यह झूठ है—वह उस स्त्रीकी कामना करता था,—उसके हृदयमे प्रेम नही, लालसा थी। वह एक पाशविक वासनासे ग्रसित था, अन्यथा वह उस स्त्रीके पतिकी हत्या कदापि न करता। सच्चा प्रेम पावन है—वह कालिमाको मिटा देता है, वह पाशविकतासे सदा दूर रहता है। भक्तिको विषय-वासनासे, इन्द्रिय-लालसासे, स्वार्थसे, अधिक उन्नत होकर अनंत परमात्माके सौन्दर्यके अनुभवसे आनन्द प्राप्त करना चाहिये। गीतामे अकारण ही भक्तिको अकाम नहीं कहा है। प्रसिद्ध फरासीसी दार्शनिक फेनेलोन (१६५१–१७१५) की एक प्रार्थनामे यह विचार भली भाँति व्यक्त हुआ है:—

"हे प्रभु ! मै नहीं जानता कि मै आपसे क्या माँगू। हे परम-पिता ! इस वत्सको वही दो जिसका माँगना उसे स्वयं नही आता।

किन्तु वह उसका फल पाता है आनन्दलोकमे—जहाँ कि गंभीर स्वर निनादित होते और सुखमय दृश्य दिखलाई पड़ते है।

नारद-सूत्रमें हम पढते है कि भक्ति परमप्रेमका रूप है। परमका अर्थ है, अत्यन्त गहरा। ईश्वरके प्रति प्रगाढ प्रेम ही भक्ति है। मेरे विचारसे परमका अर्थ चरम अथवा अनन्य समझना ठीक होगा। उसमे उपयोगिताका प्रश्न नहीं उठता। वह अहेतुक है; किन्तु अकारण नही। उसमे फलप्राप्तिकी याचना नहीं, वह स्वार्थसे रहित है। भक्त भगवान्की मंजुल मूर्तिसे प्रेम करता है, इस लिये कि वे कल्याणकारी प्रभु है। वह प्रतिफल नही माँगता, उसे स्वर्गकी भी चाह नहीं है। "हे भगवन्! यदि आपसे प्रेम करनेके लिये मुझे नरक भी मिले, तो स्वीकार है।" यह **संत टरीसा**के वचन है। भक्तोकी गतिको संसार नही समझ पाता। इसी लिये लोग उसे स्वप्नदर्शी, अविवेकी अथवा पागल कहकर पुकारते है। वह उनकी पहुँचसे बहुत परे हैं। भक्त कला-निपुण होते है।

'संगीतोका संगीत' (The Song of Songs) भक्तिका गान है। जिसने उसे लिखा है, वह कलाप्रवीण, सौन्दर्यप्रेमी अवश्य रहा होगा। श्रीचैतन्य सौन्दर्यरससे परिपूर्ण थे और उसीकी चेतनतामें सदा मग्न रहते थे। उनके पार्थिव जीवनका अंतिम दृश्य उनके नील-जलनिधिमे गोता लगानेका दृश्य था। भगवान्की मनोहर मूर्त्तिका ध्यान करते हुए वे सानन्द चले गये। श्रीचैतन्यका अंतःकरण राधाके समान था। अपने हृदयनाथ भगवान् कृष्णके नामोच्चारण मात्रसे उनके नेत्रोसे जलधारा गिरने लगती थी।

परमात्मामे लीन हो जाना! क्या भक्ति इससे अधिक गहन नहीं है? उनके प्रेमका अंश उन्हींको प्रदान करना जिससे हम उनमें प्रतिबिंबित

साक्षात् कर रहा हो—सदैव सौन्दर्यमय वातावरणमे विचरण करता रहता है, उसे सदा और सर्वत्र स्वतन्त्रताकी ध्वनि सुनाई पड़ती है। हमारा जीवन स्वतंत्रता चाहता है। किन्तु हमे यह स्मरण रखना चाहिये कि स्वाधीनता सदैव सात्विक वातावरणमे ही विचरण करे। आजकल जिसे हम स्वाधीनता कहते है, उसे दुःखहर्त्ता सौन्दर्यमय भगवान् श्रीकृष्णके प्राचीन उपदेशके द्वारा अधिक पवित्र, अधिक उपयोगी और अधिक उदार बनाना होगा। संन्यासीकी तरह जीवनसे दूर भागना भक्ति नही है। भक्तिकी उत्पत्ति जीवनकी उस गहनतासे है जहाँ प्रेम त्यागके साथ मिलकर कर्ममे प्रवृत्त होता है।

यही प्रेमकी नित्यता है। प्रेम मरणको रुचिर बना देता है। धर्म-ग्रन्थोमे लिखा है कि भक्ति अमृतका रूप है। अमृतका शब्दार्थ है अमर, मृत्युहीन। वास्तवमे अमृतसे अनन्त-जीवनका बोध होता है। भौतिकतामे निमग्न, मृत्युकी गहनतामे गूढ जीवनसे ही भक्तिका उदय इस वास्ते होता है कि प्रेमकी दिष्टि (Destiny) सार्थक होवे। जीवनके ससर्गसे, प्रकृतिके साक्षात्से तथा मानव-जातिकी सेवासे भक्तिका विकास होता है। जिसने जीवनसे मैत्री स्थापित कर ली है, उसके लिये मनुष्य और प्रकृति कैसे अद्भुत और सुखद है! भक्त ही तत्त्वका सच्चा रहस्य समझता है। वह समस्त दृष्टिगोचर जगतको सौन्दर्य और विचित्रतासे आवृत देखता है।

उसके लिये कुछ भी ऐहिक अथवा प्रपंच नही है। वह भौतिकको आध्यात्मिककी छाया मात्र समझता है। स्त्री, पुरुष तथा बालकके मुखमे उसे परमात्माका चित्र दीख पड़ता है। विज्ञान, सभ्यता तथा नगरोके व्यवसाय उसे प्रतिदिन वह प्रेम-संदेश सुनाते है, जो मायाको लीलामे परिणत कर देता है। प्रकृतिको वह आत्माका संसरण मानता है। एक

मै निर्वाण तथा आश्वासन माँगनेका साहस नहीं करता। मैने आपके सन्मुख केवल उपस्थित होकर अपना हृदय खोल दिया है। मेरी उन आवश्यकताओको आप देखे जिन्हें मै स्वयं नहीं जानता। उन्हें देखिये और जैसी दया हो वैसा करिये। मारो अथवा बचाओ, मेरा पतन करो अथवा उद्धार करो, आपके सब अभिप्राय अज्ञात होते हुए भी मेरे पूज्य है। मै मौन हूँ, मै अपनेको बलिदानके लिये आपके सामने उपस्थित करता हूँ, मै आपको आत्मसमर्पण करता हूँ। आपकी आज्ञा पालन करनेके अतिरिक्त मेरी कोई अभिलाषा नही है। मुझे स्तुति करना सिखलाइये, आप स्वयं मुझमे आकर मेरे लिये प्रार्थना करिये।"

भक्त अकाम है, इस कारण कि उसे ईश्वरके प्रेमका ज्ञान है। धर्म निरी भावुकता नही है। भक्तका जीवन केवल भावना या रागसे परिपूर्ण नहीं रहता, उसमे ज्ञान भी रहता है। संभव है कि जीवनकी, संसारकी, विज्ञान अथवा सभ्यताकी अनेक बातोको वह न जानता हो; किन्तु एक परमावश्यक सत्यको उसने जान लिया है। वह है भगवान और उनके प्रेमका ज्ञान। अतएव उसका निष्काम भाव पूर्णतया निषेधात्मक नहीं है। उसमे नैसर्गिक प्रेमके लिये स्पष्ट आत्म-समर्पण है। अतएव भक्त संसारका तिरस्कार नहीं करता, प्रत्यक्षसे द्वेप नही करता। उसके लिये जीवनके विषय तथा रूप उस आराध्य अनन्य प्रेमके आवरण मात्र है। वह जानता है कि मनुष्यकी सेवा भी ईश्वरकी उपासना है। "मै तुमसे सच सच कहता हूँ कि जो कुछ भी तुमने दीन अतिदीन भाइयोके लिये किया है, वह वास्तवमे मेरी ही सेवा है।"

भक्त—चाहे वह मौनधारण किये हो, चाहे वह हरिनामका जप कर रहा हो, चाहे वह अपने कर्तव्यमे दत्तचित्त हो, चाहे वह समाज-सेवामें तल्लीन हो, चाहे वह न्यायके लिये उद्योगशील हो, चाहे वह प्रकृतिसे

क्या हम धर्मको त्याग दें ?

हमारे देशभाइयोमे अनेक ऐसे है जो धर्मको निर्बलता और दुःखदायी प्रभाव मानकर जीवनके कार्योंसे उसे निकाल बाहर करना चाहते है। वे कहते है कि राष्ट्रीय स्वतंत्रताके लिये धर्म तकका बलिदान करना पड़ेगा। परंतु मै तो उस इतिहास-लेखकके विचारसे सहमत हूँ जिसने लिखा है कि "धार्मिक जीवन ही सबल राष्ट्रोका एक सर्वप्रधान प्रयोजन है।" यही परमप्रधान प्रयोजन आज भारतवर्षमे नष्ट हो रहा है। मै धर्मको जीवनका तथ्य मानता हूँ। मेरी धारणा है कि धर्ममे ही सब आदर्शोंका समन्वय है। मेरा सविनय निवेदन है कि राष्ट्रीय जीवनकी जड़े मनुष्यकी बनाई हुई जड़ अथवा कृत्रिम वस्तुएँ नही, वरन् श्रद्धा, आशा, मानव-जातिके प्रति प्रेम तथा मनुष्यके आराध्य आदर्शोंमे ही पाई जाती है। धर्म ही हमे आत्म-निष्ठा और स्वावलंबन सिखलाता है; क्योकि धर्महीसे अंतःकरणमे विराजमान आत्माका, तथा मनुष्यकी दिव्य दृष्टिका परिचय मिलता है।

आजकल अनेक भारतीय नवयुवक आत्मा तथा आध्यात्मिक साम्राज्यका अस्तित्व तक नही मानते। जिसे प्रसिद्ध दार्शनिक मेयरने " सब धर्मोंकी इतिश्री और भूमिका कहा है" उसीकी सत्यतापर विश्वास करनेमे उन्हें शंका होती है। भारतवर्षमे इस सशंक भावका होना अनेक कारणोका परिणाम है। वर्तमान भारत पश्चिमी देशोके शिल्पवाणिज्य तथा राजनीति-विषयक आक्रमणोसे ही नही, वरन् मानसिक तथा बुद्धि विषयक आक्रमणोसे भी पीडित और ग्रासित है। पश्चिमके देश आज ऐसे युगमे प्रवेश कर चुके है जिसे देखकर हिन्दू-धर्म ग्रंथोमे लिखित कलियुगका स्मरण हो आता है—उस युगका जब कि मनुष्यकी आध्यात्मिक दृष्टि

पहाड़ी मनुष्यको पुष्पोसे बहुत प्रेम था और उसने अपने बगीचेमें फूलोंके कई पेड़ लगा रक्खे थे। एक दिन वह बीमार पड़ गया। उसमे बिछौनेपरसे उठनेकी भी शक्ति न रही। इस लिये वह उन पुष्पवृक्षोकी पानी आदि देकर सेवा न कर सका। किन्तु वह दिन प्रतिदिन प्रेम और उदास भावसे उन पुष्पोकी ओर अपने झरोखेसे देखा करता था। एक दिन जब वह अपने झरोखेपर बैठा था तब उसने देखा कि छोटे छोटे बच्चे, विविध रंगोके वस्त्र धारण किये हुए उस उद्यानमे पुष्पोके निकट, गान कर रहे है। बालकोके मनोहर सौन्दर्य और संगीतने उस पर्वतवासीको आह्लादित कर दिया। उसने उनसे पूछा—"तुम कौन हो?" वे बोले—"हम पुष्पवासी देवता है और अपने संगीतसे तुम्हारी व्याधि दूर करने आये है।" उस पर्वतवासीके अंतःकरणमे भक्ति थी। गीत और सौन्दर्यसे उसे प्रीति थी। उसके नेत्र उन पुष्पवासी देवताओके दर्शन कर सके। उसकी व्याधि दूर हो गई। यह कथा दृष्टान्तरूप, निदर्शन मात्र है।

समाप्त।

है कि आजकलके विज्ञानने मनुष्य, जगत् तथा विश्वके अनेक पारस्परिक संबंधों, नियमो और लक्षणोको बदल दिया है; फिर भी आत्मज्ञानकी प्रतिभा उसके आक्रमणोसे अब भी अपराजित है और आज तक अविचल भावसे मस्तक ऊँचा किये खड़ी है ।

विकास ! हाँ, ठीक है । किन्तु विकासकी क्रियाके लिये मानस, आत्मा और ब्रह्मके आधारकी नितान्त आवश्यकता है । विना इनके विकास असंभव है । तुम कहते हो कि भौतिक जगत्का विकास होता है; किन्तु क्या मनके विना विकास सभव है ? निरी जड़ वस्तुमे विकास कैसे हो सकेगा ? यदि विकास किसी नियमसे, आदिकारणसे, आत्माके सिद्धान्तसे प्रेरित न हो, तो संसारकी गति भ्रश और विनाशकी ओर ही होगी ।

धर्म कलह, द्रोह और वैमनस्यसे परे है। साप्रदायिकता धर्म नही है। जो हमे निर्बल करे, वह अधर्म है । धर्ममे संयोजन है, एकीकरण है । धर्म मनुष्यको आत्मासे संबद्ध कर जीवनको नवीन शक्ति और नवीन गौरवसे विभूपित करता है । धार्मिक प्रवृत्ति और भावनाके क्षयसे राष्ट्रोका पतन होता है, क्योंकि "धर्म ही शक्ति है ।"

—टी० एल० वास्वानी ।

तथा ज्ञान-चक्षुपर परदा पड़ जावेगा। मुझे विश्वास है कि गत महासमर यूरोपकी आँख खोलनेमे अब भी समर्थ हो सकेगा। शास्त्रोमे लिखा है कि 'रक्त और ज्वाला' ज्ञानको उत्पन्न करते है। हे भगवन्! वह दिन शीघ्र आवे जब कि एक नवीन बुद्धि और भावनाकी सृष्टि—एक नवीन युगका उदय—हो सके। प्रस्तुतकालमे पश्चिमीय देशोका सर्वोत्कृष्ट ज्ञान भौतिकवाद ही है। जर्मनीकी बुद्धिने यह ऊँटपटाँग युक्ति ढूँढ निकाली कि "ईश्वरने आत्म-हत्या कर ली है और अब उसका ध्वंसावशेष हमारे रूपमे सारे संसारमे फैल रहा है।" जगद्विख्यात फरासीसी विद्वान् अनातोले फ्रान्स (Anatole France) जिसे कि बहुतसे लोग अपना गुरु मानते है कहता है कि "मै परमात्माके विपयमे एक ऐसा कथोपकथन लिखना चाहता हूँ जिससे मै इस सिद्धान्तकी पुष्टि कर सकूँगा कि यदि ईश्वरका वास्तवमे अस्तित्व है तो वह सचमुच सबसे अधिक निन्दनीय और घृणित व्यक्ति होगा, क्योकि उसने इस महासमरको होने दिया है।" सर आर्थर कोनन डाइलने दुःखके साथ सच ही कहा है कि "हर देशमे वर्त्तमान विचार-शैली आध्यात्मिक भावोको पूरी तौरसे तलाक दे रही है।" पश्चिमकी आधुनिक अध्यात्मविद्या जीवनके आंतरिक समष्टीकरणसे प्रेरित नहीं है। गिरिजाघर (ईसाइयोंके उपासना-मंदिर) बहुतोको सतोष नही दे पाते, बाह्यरूपने अपरोक्ष और आध्यात्मिकको कुचल दिया है। भारतवर्षके बहुतसे नवयुवक पश्चिमी ज्ञानके वशीभूत हो धर्म तकको मर्त्य और नाशवान् मानने लग गये है।

यह सच है कि पूर्वीय देशोमे भी और पश्चिमीय देशोमे भी, सर्वत्र, "पुरानी व्यवस्था बदलती है।" इस परिवर्त्तनके होते हुए भी प्राचीन धर्म और विश्वासके सिद्धान्त अटल अचल बने रहते है। यह सच

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज ।

इस ग्रन्थमालामे अब तक विविध विषयोंके—नाटक, उपन्यास, काव्य, विज्ञान, राजनीति, इतिहास, सदाचार, आदिके—६२ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दीमे अभी तक यह सबसे अच्छी ग्रन्थमालामे समझी जाती है। बड़ेसे बड़े विद्वानों और समालोचकोंने इसकी प्रशंसा की है। इसका एक सेट मँगाकर अपने गृहपुस्तकालयकी शोभा बढ़ाइए। स्थायी ग्राहकोंको इसके तमाम ग्रन्थ पौनी कीमतमे दिये जाते हैं। केवल एक रुपया फी देनेसे हर कोई स्थायी ग्राहक बन सकता है। एक कार्ड लिखकर सूचीपत्र मँगा लीजिए। आगे केवल तीन ग्रन्थोंका परिचय दिया जाता है:—

जातियोंको सन्देश

इसमे साम्राज्यवादिनी पाश्चात्य जातियोंको बड़ा ही मार्मिक और चुभनेवाला आध्यात्मिक उपदेश दिया है और बतलाया है कि जब तक ये साम्राज्यवादी राज्य दुर्बल जातियो पर अत्याचार करना न छोड़ेगे, स्वार्थसाधुतासे घृणा न करेगे तब तक ससारमे शान्ति होना असभव है। तोपे और मशीनगन्स, तारपीडो और हवाई जहाज, विज्ञान और कलाकौशल संसारके सुखोंकी वृद्धि नहीं कर सकते। सुख और शान्तिके लिए समता, सदाचार, विश्वमैत्री आदि भावनाओंकी आवश्यकता है। इसके लेखक वही पाल रिचर्ड है जिन्होंने साधु वास्वानीकी प्रशंसा की है, जो योगी अरविन्द और महात्मा गाँधीके परम भक्त हैं तथा सुप्रसिद्ध विश्वप्रेमी और शान्तिके उपासक है। इसकी भूमिका विश्वविख्यात कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरने लिखी है। इसीसे पाठक इस पुस्तकका महत्व समझ सकते है। संजीवन सन्देश पढ़नेवालोंको यह पुस्तक भी अवश्य पढ़नी चाहिए। मू० नौ आने।

मुक्तधारा

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके एक नये नाटकका अनुवाद। इसमे भी विश्वप्रेमकी भावनाओंको जाग्रत् करनेवाला सन्देश दिया गया है। इसमे व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंपर एक नये ही
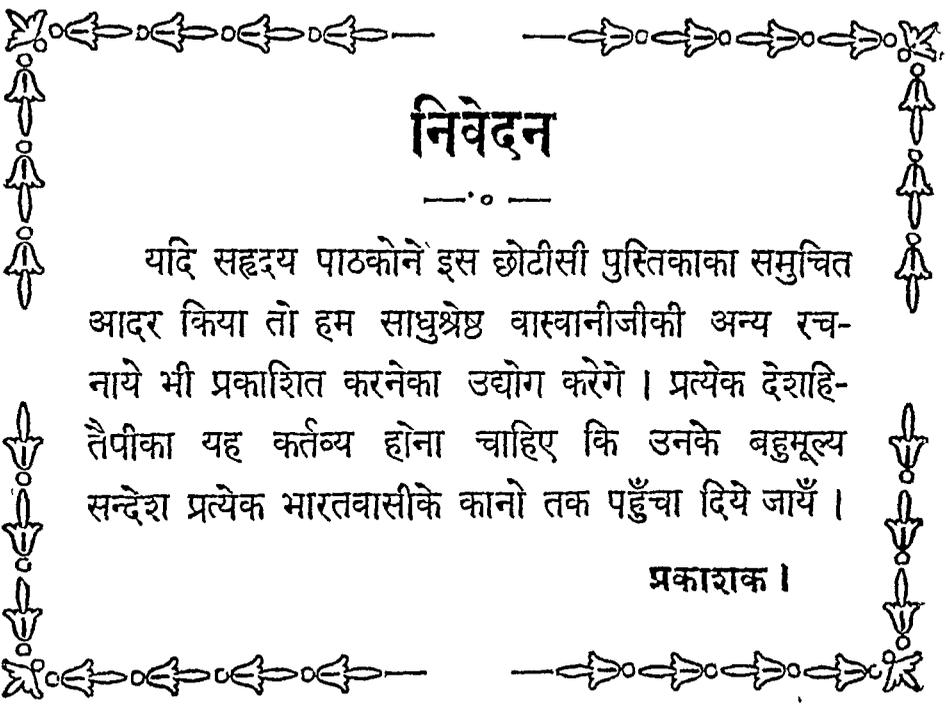
निवेदन

यदि सहृदय पाठकोंने इस छोटीसी पुस्तिकाका समुचित आदर किया तो हम साधुश्रेष्ठ वास्वानीजीकी अन्य रचनाये भी प्रकाशित करनेका उद्योग करेंगे। प्रत्येक देशहितैपीका यह कर्तव्य होना चाहिए कि उनके बहुमूल्य सन्देश प्रत्येक भारतवासीके कानो तक पहुँचा दिये जायँ।

प्रकाशक।

ढंगसे प्रकाश डाला गया है। प्रारंभमे पुस्तकके अनुवादक प्रो० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री, एम० ए०, तर्कशिरोमणिकी विस्तृत भूमिका है जिसमें नाटकके गूढ़ तत्त्वपर अच्छी तरह प्रकाश डाला गया है और नाटक पात्रोंका चरित्र विश्लेषण भी किया गया है। इस नाटकके एक पात्रमे बिल्कुल महात्मा गाँधीके व्यक्तित्वका आभास होता है। मू० ग्यारह आने।

प्रायश्चित्त

बेल्जियमके नोबल-प्राइज-प्राप्त सुप्रसिद्ध लेखक और कवि मेटरलिंककी भावपूर्ण और हृदयद्रावक नाटिकाका अनुवाद। पश्चात्ताप और सद्भावोंकी अग्निमे बड़ेसे बड़े पाप—जिन्हे जगत् अक्षम्य समझता है—भस्म हो जाते है और इस प्रकारसे पश्चात्ताप करनेवाली आत्मायें मनुष्यकी ही नही किन्तु देवोंकी दृष्टिमे भी पूज्य और पवित्र बन जाती है। इस नाटिकामे एक कल्पित घटनाके द्वारा ये ही भाव प्रकट किये गये है। मेटरलिंक आध्यात्मिक कवि हैं, उनकी कलम बाह्य जगतके नहीं किन्तु अन्तर्जगतके स्वर्गीय चित्र अंकित करती है। नाटिका छोटी है किन्तु है बहुत ही भावपूर्ण। मू० चार आने।